गीली आँखें

लेखक

पं० पुरुषोत्तमदास गौड़ 'कोमल'

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-ग्रन्थावली

कटरा, प्रयाग।

प्रकाशक:—
पं० उजियारेलाल मिश्र
संचालक:—
हिन्दी-साहित्य-ग्रन्थावली
कटरा, इलाहाबाद ।
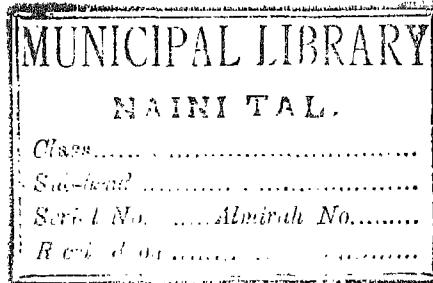
१९४३ ई०

पहिली बार

दो रुपया
आठ आना

मुद्रक:—
शिवनन्दन शर्मा
हिन्दी-प्रेस, प्रयाग ।

अपने परम हितैषी श्रद्धेय श्री शालिग्रामजी जायसवाल को जो इस समय नैनी सेन्ट्रल जेल प्रयाग में नज़र बंद हैं।

क्या लिखूं?

गत दस बारह वर्षों से हिन्दी को मैं अपनी कहानियाँ भेंट करता रहा हूँ। परन्तु अपनी कहानियों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का साहस अब तक नहीं कर सका। सोचता था; पता नहीं मेरी यह कहानियाँ पाठकों के अन्तर को छू सकेंगी या नहीं पर जब सब यही कहते हैं तो यह आपके सम्मुख है। जो कहानियाँ जैसे लिखी गईं वैसे ही वे यहां संग्रहीत हैं।

जिस समय पुस्तक प्रेस में थी उस समय मैं जेल में नजरबंद था। पुस्तक के प्रूफ का सारा कार्य भाई हरिचरणलाल वर्मा शास्त्री ने किया इसके लिए उनको धन्यवाद है।

अन्त में मैं अपनी भतीजी अध्यापिका शान्ती देवी मेहरूडीह, प्रयाग को नहीं भुला सकता जिसने कि संग्रह लिखते समय जब कि मैं बीमार था मेरे उपचार वगैरह का विशेष ध्यान रक्खा वह अपनी ही है इसलिए धन्यवाद नहीं दे सकता पर उसकी यह सहायता मेरे निकट अमूल्य है।

३४४ कटरा, प्रयाग।
१-८-४१

[signature]

विषय-सूची

साँपिन

जीवन का मधु उसके लिए विष हो गया। तो उसने उसे साँपिन कह अपने गले से निकाल फेंका। किन्तु जब वह साँपिन का बच्चा आ गया तो वह फंदा फिर कसने लगा। विष जैसे उसके चढ़ रहा हो।

विमला के पति ने अपनी नव-विवाहिता पत्नी की अपेक्षा सैनिकता को अधिक प्रिय समझा, सो सेना में अफसर हो गया है। जिस समय उसकी सेना विदेश भेजी जा रही थी उसी समय उसे इक्कीस दिन की छुट्टी मिली थी। शायद अब न लौटना हो यह सोच सुशील ने विमला के पास ही सारी छुट्टी व्यतीत की; पहले सोचा था, और चन्द मित्रों तथा सम्बन्धियों से भी मिलने के लिए जायगा परन्तु न जा सका। और जब जाने लगा तो वह विमला के लिए सारा प्रबन्ध कर गया था। परन्तु इतने बड़े मकान में अकेले रहते विमला को जाने कैसा लग रहा था; और जब प्रतीक्षा की कुछ अवधि भी तो हो।

रात बादलों के कारण अधिक धुंधली हो गई थी; वर्षा कुछ रिमझिम करके बरस रही थी। विमला को नींद नहीं; बिस्तर पर पड़ी वह करवटें बदल रही थी कि तभी सामने वाले मकान से बेला की आत्मा कोई मिलन-रागिनी गा उठी।

सामने के मकान में एक अध्यापक रहते हैं। संगीत के बड़े प्रेमी हैं; नया-नया विवाह हुआ है; पत्नी बड़ी सुन्दर है। दिन सुख के कट रहे हैं। और एक वह है कि उसने पति का सुख चन्द मास भी तो अनुभव नहीं किया और वह छोड़ कर उसे चले गये। सोचती रही वह कि पुरुष को अहिंसा क्या इतनी प्रिय है।

किन्तु सोच वह अधिक देर तक नहीं सकी। उसके अङ्ग-अङ्ग में स्पंदन हो रहा था जाने कैसा उसे आज लग रहा था। कुछ देर तक वह बैठी रही; खिड़की के बाहर गिर रही वर्षा की बूंदे जैसे उसे बुला रही थीं। उठ कर वह ऊपर की मंज़िल में पहुँची। छत बहुत ऊँची है। टीन का एक सायबान पड़ा है। विमला उसी की छाया में टहलने लगी तो बेला का उन्माद और भी बढ़ गया। विमला को लगा कि वह जा कर बेला को तोड़, उसे बजाने वाले की अंगुलियाँ तोड़ दे पर वश नहीं।

तभी सहसा बेला की 'धुनि' बंद हो गई। कुछ खिंची सी वह छत की मुँडेर से आ टिकी। सामने वाले मकान का दरवाज़ा खुला था अन्दर बिजली का प्रकाश हो रहा था। विमला ने देखा मास्टर ने बेला को मेज पर रख दिया है और अपनी पत्नी को अङ्क में भर चुम्बन ले रहा है। शायद बेले की करुणा की अपेक्षा उन पतले लाल अधरों का चुम्बन उसके निकट अधिक मधुर था।

क्षण भर विमला उन्हें देखती रही फिर उसे जान पड़ा जैसे वह निर्जीव होकर गिर पड़ेगी। हवा का एक झोंका बरसात की बूंदें लेकर उसे हिलोर गया; जल्दी से वह लौट पड़ी अपने कमरे में; तो यह विरह उसके लिए अधिक तीव्र हो उठा। उसे प्रतीत होने लगा जैसे वह बिना किसी पुरुष के नहीं रह सकती।

कमरे की खिड़की पर खड़ी हो वह बड़ी देर तक शून्य की ओर देखती रही फिर जैसे उसके हृदय में भी बादल उठ रहे हों और उसके कंठ से विरह संगीत फूट पड़ा। आकाश रोने लगा हो जैसे, एक वेदना सी समस्त वातावरण में व्याप्त हो गई। विमला अपने को जैसे भूल गई हो। गाती ही रही गाती ही वह।

सामने के दम्पति शायद सोने लग गए थे कि विमला की विरह

रागिनी सुन अपने बारजे पर आ खड़े हुए। विमला की ओर बेसुध से निहारने लगे। मास्टर साहब का विमला से परिचय है; सो जब उसका संगीत बन्द हुआ तो मास्टर साहब ने पुकार कर पूछा—कहिए श्रीमती विमला आज नींद नहीं आ रही है क्या ?

विमला ने सुना परन्तु कुछ उत्तर न दिया। उत्तर देना वह चाहती ही नहीं। आकर अपनी पलङ्ग पर लेट कर फूट-फूट कर वह रो पड़ी; बिस्तर सारा उसने उठा कर फेंक दिया।

मास्टर की पत्नी ने कहा—आप भी अजीब आदमी हैं वह बेचारी तो अपने पति के विरह में छटपटा रही थी और आप उससे परिहास कर रहे थे।

परिहास ! आश्चर्य से मास्टर ने पत्नी की ओर देखा।

'परिहास नहीं तो और क्या था ? कि नींद नहीं आरही है क्या?' पत्नी ने कहा तो मास्टर को भी जान पड़ा कि उसने सचमुच में ही विमला को पुकार कर भूल की है; और शायद इसीलिए तो विमला ने अपनी बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

दूसरे दिन से मास्टर और उसकी पत्नी अवकाश का अधिकांश समय विमला के पास बैठ कर काटते थे। विमला के जीवन में कुछ सरसता आ उठी थी। दिन बीतते गए तभी एक दिन मास्टर की पत्नी का भाई आया। वह अपने मायके चली गई तो विमला ने कुछ एकाकी सा महसूस किया किन्तु मास्टर विरह में क्षुब्ध हो उठा। जीवन जैसे वह काट ही नहीं सकता बिना अपनी उस नारी के।

उस दिन मास्टर स्कूल से जल्दी ही लौट आया था। पानी प्रातः से ही बरस रहा था सो स्कूल में छुट्टी हो गई थी। मास्टर दिन भर आ विमला के पास बैठा रहा। दोनों कैरम खेलते रहे पर पानी न बन्द हुआ। शाम का खाना भी मास्टर ने विमला के ही यहाँ किया और फिर जब बहुत देर हो गई तब वह जा अपने कमरे में लेट गया। पर नींद उसे आ नहीं रही थी। विमला के जीवन में जो वेदना बस रही है उसका अनुभव उसे आज ही हुआ।

आधी रात हो गई पर विमला को नींद नहीं आई खिड़की से वह बाहर पानी का बरसना देख रही थी। सड़क पर पानी ही पानी भरा हुआ था। आज वह ऊपर के कमरे में न लेट नीचे के कमरे में लेटी थी।

शायद सड़क पर का कोलाहल उसके हृदय के शून्य को कुछ कम कर सके। पर हो सका कुछ न। सड़क के बहते हुए जल को वह क्षणभर देखती रही, फिर और भली तरह उसे देखने के लिए वह बरामदे में आ गई। और खम्भे से लग कर खड़ी होकर पानी को भागते हुए देखने लगी तो उसकी आत्मा से करुण-संगीत फूट निकला।

वर्षा के छल-छल-कल-कल में उसका संगीत बह निकला; स्वर लहरी पल-प्रति-पल तीव्र होती जा रही थी। मास्टर को भी नींद न आई थी; जाग वह रहा ही था, कि विमला की संगीत लहरी सुन वह कांप उठा; ध्यान से सुनता रहा फिर उसे ऐसा जान पड़ा मानो कोई उससे कुछ कह रहा हो। अपने बारजे पर खड़ा उसने नीचे खम्भे से अपने कपोलों को टेके खड़ी विमला को देखा। उसकी आखें एक ही ओर को बिलीन हो रही थीं और स्वर-लहरी का विरह-संगीत प्रतिपल और अधिक करुण होता जाता था।

मास्टर देखता रहा, बड़ी देर तक देखता रहा। इस संगीत में कितना निमन्त्रण है; कितना निमन्त्रण है ?

और चन्द क्षणों बाद मास्टर विमला के निकट खड़ा था और वह गाये जा रही थी, गाये जा रही थी। मास्टर ने उसे अंक में भर कर चूम लिया तो विमला की करुणा जैसे विलीन हो गई हो। उसे ऐसा जान पड़ा कि वह उस लोक से बहुत दूर है, बहुत दूर!

दिन बीतने लगे परन्तु फिर विमला के कंठ से कोई करुण-रागिनी न निकली; जीवन में एक नमी आ गई। मास्टर संध्या समय स्कूल से लौटकर आता तो विमला के पास आ जाता और फिर विमला सब कुछ भूल जाती। विमला ने सोचा शायद अब यही जीवन है, यही सत्य है और सब मृत्यु है, मिथ्या है।

दो महीने बीते तो मास्टर की पत्नी आगई। मास्टर विमला के पास आता पर अब वैसे नहीं, पत्नी की दृष्टि भी तो बचानी पड़ती थी परन्तु कब तक हो सकता था यह। पत्नी ने अनुभव किया कि पति के व्यवहार में वह कोमलता नहीं, वह आकर्षण नहीं, वह मधु नहीं। पति को वह बराबर सतर्क दृष्टि से देखने लगी। विमला से जाने क्यों उसकी सम्वेदना कम होने लगी, सन्देह यद्यपि वह उस पर नहीं करती थी।

दिसम्बर की हवा का शीतल झोंका जो उसे लगा तो जग पड़ी; हाथ फैलाकर उसने पति के अंक में छिपना चाहा कि सहसा चौंक पड़ी। बिस्तर पर पति नहीं था। तो सोचा आते होंगे। जब काफ़ी समय हो गया तो सशंक हो वह उठी। तभी उसे दिखाई पड़ा विमला के कमरे में प्रकाश हो रहा है। कौतूहल वश वह दरवाजे पर देखती रही। खिड़की बन्द थी कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। तभी उसने देखा मास्टर, उसका पति विमला के घर से बाहर निकला; एक बार उसने विमला का मुख चूमा और फिर अपने घर की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। विमला द्वार बन्दकर चली गई।

पत्नी उसी प्रकार जड़ सी खड़ी रही मास्टर कमरे में प्रवेश करते ही सब समझ लिया; सांपिन को गले से निकाल फेंका। रोज रात को वह विमला की करुण-रागिनी सुनता तो मन में कहता—उसने सांपिन को गले से निकाल फेंका है।

पत्नी उसे कस कर पकड़ लेती जैसे उसे भय था कहीं फिर न उसका पति उसके हाथ से निकल जाय।

आज रागिनी विमला की नहीं सुन पड़ी तो मास्टर और उसकी पत्नी को आश्चर्य हुआ; सोचा कुछ तबियत खराब होगी। दूसरे दिन से फिर विमला की करुण-रागिनी तो नहीं, हां एक नवजात बालक का रोना अवश्य सुन पड़ता था।

और जब विमला अपने छोटे से सुन्दर बच्चे को ले द्वार पर खड़ी होती तो मास्टर सोचता—सांपिन का यह फंदा कैसे निकाल फेंके। गला उसका दिन पर दिन कसता जा रहा था; और वह खिंचता आता, खिंचता आता ज्यों-ज्यों डोर खिंचती जाती।

———

अं एक आग जो वर्षों से संजोकर
वह अपने हृदय में रखे है तो फिर
गी यदि किसी ने अँगीठी कह दिया
उसे तो बुरा क्या ? और जो उस
ठी अंगीठी का अंगार मिट गया तो
वह एक बार भभक कर बुझ गई।

गाड़ी ज्यों ज्यों पटना स्टेशन के निकट आती जाती त्यों त्यों सुशील की विचार धारा भी तीव्रतर होती जा रही थी। सिगरेट पर सिगरेट वह जलाता जा रहा था जैसे बिना सिगरेट पिये वह रह ही नहीं सकता। डिब्बे के मुसाफ़िरों से जैसा उसका कोई सम्बन्ध ही न हो। जब कोई मुसाफ़िर उसकी ओर देखने लगता तो वह उसकी ओर इस प्रकार देखता रह जाता जैसे वह उसका परिहास कर रहा हो।

अगले स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई। एक भीड़ की भीड़ डिब्बे में भर आई मुसाफ़िर ने अपने पैर समेट लिए सिगरेट की एक कश खींची और धुँये का अम्बार छोड़ता हुआ बैठा रहा—निकट के यात्री ने अपने बगल वाले यात्री से कहा—एक तो इतनी गर्मी है, और ऊपर से इतने यात्री एक ही डिब्बे में भर जाते हैं कि कुछ न पूछिए। मारे गर्मी के जान निकली जा रही है।

'जान निकली जा रही है अरे साहब न पूछिए और उस पर मुझे सिगरेट के धुंये से सख्त नफ़रत है। पर कुछ लोग ऐसे होते हैं जो हर समय अंगीठी की तरह मुँह में आग लगाये ही रहना पसन्द करते हैं।'

उसने सामने बैठे मुसाफ़िर की ओर देखा जो सिगरेट का कश खींच रहा था। जिस महाशय से यह बात कही गई थी वे कहने वाले के लक्ष्य को समझ गए, मुस्कराये और दूसरी बातें करने लगे।

सिगरेट पीने वाला मुसाफिर अपने को अँगीठी कहे जाते सुन कर भी चुप रहा। चाहा कि कह दे। हां,जी, मैं अमीर ही तो हूँ। एक आग जो वर्षों पहले मेरे कलेजे में लगी थी उसे कब से संजो कर रखता आया हूं। अपनी आग को जलाये रखने में ही तो मुझे सुख है, वही तो मेरा जीवन है। पर कह वह नहीं सका।

सामने बैठे मुसाफिर ने जेब से अपना डिब्बा निकाला, खोल कर दो पान स्वयं खाये और दो बगल वाले महाशय की ओर बढ़ा दिये जिन्हों ने अँगीठी कहा था अपने सामने बैठे यात्री को। तभी सामने से पान सिगरेट वाले ने आवाज लगाई तो खिड़की में मुँह डाल उसने बुलाया—अजी ओ सिगरेट वाले जरा इधर तो आना भाई।

सिगरेट वाला आगया तो कहा—एक पैकट कैप्सटन और एक दियासलाई देना।

सिगरेट और दियासलाई लेकर रखली फिर जेब से पैसे निकाल कर देते हुए उसने पूंछा—क्यों जी पटना अभी कितने स्टेशन हैं।

'अरे अभी तो बहुत दूर है साहब। होगा कोई तीन घंटे का रन!' सिगरेट वाले ने उत्तर दिया।

पैसा देते हुए वह रुक गया फिर बोला—अच्छा दो पैकट और दे दो और पैसे जेब में रख एक रुपये की एक नोट निकाल उसने बढ़ा दी। सिगरेट वाला चला गया तो सामने बैठे सज्जन ने कहा—शायद सारा सफर मुझे धुँआधार में ही काटना पड़ेगा। गाड़ी में कहीं और जगह तो भी नहीं है कि चला जाऊं।

बातें मुसाफ़िर को सुना कर कहीं जा रही थीं पर वह जैसे कुछ

समझ ही न रहा हो। उसे किसी की बात सुनने का अवसर ही कहां था? वह सोच रहा था अपनी मधु के सम्बंध में। कितने दिन हुए उसे देखे हुए। उन दिनों वह एम० ए० में पढ़ता था और वह नवीं कक्षा में। पुराना परिचय जो शैशव में विकसित हुआ था अब वह प्रणय बन गया था। पर वह निर्धन की संतान और उसकी मधू एक धनी परिवार की लड़की थी। उसके पिता भला मुसाफिर ऐसे निर्धन को अपनी लड़की ब्याह कैसे सकते थे। सो उसने निश्चय किया कि वह अपने को मधू के योग्य बनायेगा अवश्य बनायेगा।

उस दिन शाम को वह कालेज से लौट रहा था तो मधू के मकान के बग़ल से जाने वाली गली से गुज़रा। मधु अपनी खिड़की पर खड़ी थी। उसने उसे देखा तो रुक गया। फिर सहसा उसका हृदय जैसे भर आया हो उसने कहा—मधू, तुम्हारे पिता तुम्हें मेरे साथ ब्याहने को राज़ी नहीं हो सकते क्योंकि मैं निर्धन हूँ पर मुझे तुम अवसर दो। केवल दो वर्ष का ही समय दो। तो मैं अपने को तुम्हारे योग्य बना लूंगा। मधू मैंने जीवन में पराजय नहीं स्वीकार की सदैव ही जो मैंने चाहा उसे प्राप्त कर लिया है पर चाहा ही बहुत कम है मैंने। मुझे समय चाहिए समय और वह तुम दे सकती हो।

मधू की आंखें सजल हो उठीं तो उसने कहा—सुनील तुम जाने कैसी बातें आज कर रहे हो!

पर सुनील जानता था कि आज ही तो वह ऐसी बात कर रहा है जिसे वह समझता है, भावावेश में आ बोला—देखो मधू तुम मुझे वचन दो कि तुम मुझे भुला नहीं दोगी।

भुला देगी जैसे सुनील भी उसके लिए इतिहास का कोई 'कैरेक्टर' हो बोली—सुनील तुम क्या मुझ पर विश्वास नहीं करते तुम मेरे जीवन में उस स्थान पर जा बैठे हो जहाँ तुम्हारा आसन सदैव ही सुरक्षित रहेगा जहां से तुम्हें कोई भी नहीं हटा सकता।

सुनील जैसे सब कुछ भूल गया हो। वह खिड़की के निकट आगया तो मधू ने अपना हाथ सींकचों के बाहर निकाल कर बढ़ा दिया—सुनील ने उसे अपने हाथ में ले कर चूम लिया और फिर आंसू भर

उसकी ओर देखते हुए कहा—मधू, दो वर्ष, केवल दो वर्ष तुम मेरी प्रतीक्षा करना। और फिर भारी पाँव चला गया।

दूसरे दिन मधू ने सुना कि उसका सुनील घर छोड़ कर कहीं चला गया। अपने माता-पिता का अकेला लड़का था। पिता ने बहुत प्रयत्न किया, दौड़े-धूपे पर सुनील का पता उन्हें कभी जब न मिला तो हार कर बैठ गए। मां पुत्र के शोक में बीमार पड़ गई तो फिर मृत्यु द्वारा ही उन्होंने चारपाई छोड़ी। पिता जीवन से थक उठे। पुत्र खो दिया, पत्नी खो दिया अब जीवन में उनके लिए शेष था ही क्या सो एक दिन वे भी घर से चले गए तो फिर न वापस आये। सुनील को इन सब का कुछ भी पता नहीं था।

और मधू जब कभी अपने कमरे में बैठी रात के नीरव पहर काटने लगती तो जाने क्यों उसे ऐसा लगता कि सुनील द्वार पर बुला रहा है। उसे विश्वास था कि सुनील आयेगा अवश्य पर वह प्रतीक्षा करे यह जो सम्भव नहीं है।

पिता ने मधु का विवाह निश्चित कर दिया। मधू को एक बार सुनील का ध्यान आया पर वह कुछ कह न सकी। कहती भी क्या दो वर्ष होने आये आज तक किसी को सुनील का कुछ भी तो पता न मिला। एक पत्र भी तो उसने नहीं लिखा। आखिर किस आशा पर वह सुनील की प्रतीक्षा करती रहे।

पिता द्वारा निश्चित किया विवाह हो गया। मधू ने पति के ग्रह में प्रवेश किया तो उसे जान पड़ा जैसे इससे अधिक सुख उसे कहीं नहीं मिल सकता। पति एक दफ्तर में नौकर थे अस्सी रुपया मासिक वेतन मिलता था। घर में सब प्रकार का आराम था। नये जीवन के आकर्षण में वह सुनील को भूल गई।

और सुनील घर से बाहर निकला तो नागपुर आया वहाँ उसने एक मिल में नौकरी कर ली। अपनी योग्यता का उसने अच्छा परिचय दिया फल यह हुआ कि शीघ्र ही वह एक अच्छे पद पर पहुंच गया उसे डेढ़ सौ रुपये वेतन मिलने लगा। और अब जो दो वर्ष पूरे होने को आये तो वह अपनी मधु को ग्रहण करने जा रहा है।

सिगरेट समाप्त होने को आ रही थी। नये पैकेट में से उसने दूसरी सिगरेट निकाली उसे जलाया और एक लम्बा कश खींचकर धुँआ खिड़की के बाहर फेंक दिया ।

सामने बैठे सज्जन ने मुँह पिचका कर सुनील की ओर देखा और अपने पतलून की क्रीज देखने लगे।

पटना स्टेशन आया तो यह स्पनन्दहीन मुसाफिर जो अंगीठी बना बैठा था जैसे सजीव हो उठा। अपनी मधु के लिए वह कितना सामान लेकर चल रहा है। मधु उसे देख कर कितनी प्रसन्न हो जायगी। सोचते हुए उसने कुली को आवाज दी।

देखना जी इसे संभाल कर उठाना। कोई सामान टूट न जाय। ताँगा कर वह कदम कुआँ की ओर चला। परन्तु अपने घर पर पहुँच कर उसे आश्चर्य हुआ। कोई दूसरे सज्जन उस घर में रह रहे थे। सोचा शायद पिता ने कोई छोटा घर किराये पर ले लिया हो इतने बड़े घर में आखिर रहता कौन? पूंछ ताँछ की तो ज्ञात हुआ कि अब उसका संसार में कोई नहीं है। उसकी वेदना उभर कर आँखों से बह निकली। बड़ी देर तक वह द्वार पर खड़ा रोता रहा। तब तांगे वाले ने कहा—बाबू जी, चलिए कब तक रोते रहेंगे।

तभी सोचा कि वह कहाँ जाय। पहले के एक पूर्व परिचित मित्र मिल गए तो उन्होंने बताया कि मधू का विवाह होगया है। आज ही तो उसके पति उसे बुलाने के लिए आये हैं। सुनकर वह चुप हो गया चुपचाप आ वह ताँगे पर बैठ गया, बोला स्टेशन चलो।

शाम की गाड़ी से वह नागपुर लौट जायगा, स्टेशन पर ही वह पड़ा रहा। और जब गाड़ी आई तो उस पर कुली से सामान रखा बैठ गया। सामने ही एक साहब अपनी पत्नी के साथ आकर बैठ गए। सुनील ने उन्हें देखा पहचान गया। यही महाशय तो हैं जो अभी सुबह साथ ही आये थे और उसे सिगरेट पीते देख अंगीठी कह रहे थे। सुनील सोच ही रहा था स्त्री ने घूंघट उठा कर देखा। तभी सुनील चौंक पड़ा अच्छा यह मधू है और यह मधूका पति। एक टीस उठी। उसने फिर सिगरेट जलाई। पीने लगा, पीता पीता

मधू के पति से बोला देखिये मैं यह सब सामान आपको दे रहा हूँ। अगले स्टेशन पर मैं उतर जाऊंगा आप मेरा सामान अपने साथ लेते जाँय आप ही के लिए लाया था।

सिगरेट उसने जोर जोर में खीचना शुरू किया। मधू के पति कुछ कह रहे थे पर सुनील जैसे सुन ही न रहा हो। एक सिगरेट के बाद दूसरा जला, धुआं डिब्बे में भर रहा था, सुनील की नीली आँखे लाल होती जा रही थी—लाल, और लाल, बहुत-लाल। तभी सहसा वह लुढक गया। निर्जीव सारे डिब्बे के मुसाफिरों ने झपट कर देखा। तो क्या वह मर गया।

अंगीठी अंतिम बार भभक कर बुझ चुकी थी।
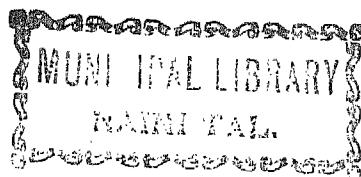
छिपकिली

कैप्टेन पांडे को रक्त पात प्रिय था पर जब उस छिपकिली का शव उनके आँखों के सम्मुख गिर पड़ा तो उनकी आँखों ने दो बूंद आंसुओं का अर्घ्यदान दे ही दिया। मानस के इस परिवर्तन के तो जीवन का मधुरहस्य निहित होता है।

होटल की ये दिवालें पाषाण की बनी हैं, जी हां, पाषाण की जिन में न तो अनुभूति है और न है दर्द ! अपने आस पास सब कुछ घटते तो ये देखती रहती हैं पर क्या कभी इन के हृदय में भी कम्पन होता है। अभी उसी दिन तो यह आकर इन्हीं दिवारों के इस बंद कमरे में चन्द रातों के नीरव प्रहरों को काटने के लिए ठहर गया था, पर काट यह क्या सका; उसी रात्रि को तो किसी ने उसके हृदय में एक छोटा सा छेद कर दिया जिस से रक्त की धारा बह कर फर्श पर फैल गई तो शायद इन निर्जीव दिवालों को भी ज्ञात हुआ होगा कि इस नर कंकाल की छाती की हड्डियों के भीतर भी छोटा सा एक दिल था ऐसा ही कुछ लाल-लाल।

पर नहीं पत्थर की इन दीवालों में दर्द नहीं है; कि दूसरे ही दिन उस कमरे में एक नया किरायेदार आ गया—पत्थरों के बीच पत्थर की तरह रहने के लिए।

कैप्टैन पांडे ने कमरे में पैर रखा ही था कि पीछे से नौकर ने कहा—हुजूर, अभी परसों ही इस कमरे में एक आदमी ने आत्म हत्या कर ली थी।

कैप्टेन ने जैसे कुछ सुना ही नहीं तो नौकर ने क्षण भर रुक कर फिर कहा—लोग तो इस कमरे को लेने से डरने लगे हैं।

डरना! कैप्टेन चौंक पड़ा; आंखों में जैसे किसी ने क्रोध की लाल शराब ढरका दी हो; घूम कर नौकर की ओर देखा तो वह बेचारा सहम गया। कैप्टेन कुछ अस्फुट स्वरों में बिगड़ता रहा तो नौकर कमरे से बाहर चला गया!

कैप्टेन बैठ गया पड़ी हुई कोच पर! तो हां, शायद इसी कोच पर बैठा हुआ आत्म हत्या का पात्र सोचता रहा होगा कि अपने जीवन से वह कितना थक गया है, उसके लिए आत्म हत्या ही तो अंतिम साधन है।

प्रकृति ने मनुष्य को कितना विवश बनाया है। वह अपनी इच्छा से उत्पन्न नहीं हो सकता पर मरने के लिये भी वह कोई प्रतिबंध न लगा सकी। पर आत्म हत्या करने वाले होते, कितने कायर हैं। कैप्टेन को हँसी आ गई; तभी वह सोचने लगा, पिस्तौल की एक गोली! कितनी छोटी होती है! और फिर वह कायर; उसमें खूनही कितना रहा होगा! यही दो चार बूंदें फर्श पर गिर गई होंगी और इसी को लोग आत्म हत्या कहते हैं; भयानक!

उसे बड़ी जोर की हँसी आ गई। सामने कोरीडोर से कोई जा रहा था कैप्टेन की हँसने की आवाज सुन कर उसने कमरे की ओर दृष्टि घुमा दी पर कैप्टेन हँसता ही रहा।

तभी उसे ध्यान आ गया इसी युद्ध में वह जब युद्ध-क्षेत्र में था, रक्त का ध्यान, वह स्फूर्ति से भर गया। सामने रखे हुए पीतल के गुलदस्ते को अपने दोनों हाथो से दबा कर विकृत कर दिया जैसे वह

खून निकाल लेना चाहता हो, चाहता हो कि कमरे के सारे फ़र्श पर रक्त ही रक्त हो।

इतने से उसे शान्ति नहीं मिली, उठ कर कमरे में टहलने लगा फिर आ कर खिड़की के पास खड़ा हो गया।

सामने वह यूकिलिपटस का पेड़ है, कबूतर का एक जोड़ा बैठा चंचुमिलन कर रहा था। कैप्टेन को हँसी आगई धीरे धीरे उसकी उँगली एक शीतल सी वस्तु को लिये और ऊपर को उठी; फिर एक धीमा सा स्वर और ओह,...वह कबूतर नीचे गिर पड़ा! कैसी तड़प रही थी उसकी उड़ती हुई आत्मा? कबूतरी उड़ कर अपने प्रेमी के पास पहुँचने को ही थी कि उंगलियां फिर चंचल हो उठीं परन्तु उसी क्षण उसने सोचा नहीं इस से तो कबूतरी अपने दुःख से मुक्त हो जायगी; फिर लाभ ही क्या?

पिस्तौल उसने रख दी और बैठ गया। कैप्टेन पांडे एक महीने की छुट्टी लेकर आये हैं। युवावस्था में ही माता पिता की मृत्यु के पश्चात जब वे अकेले रह गये थे तो किसी ने भी उसके प्रति सहानुभूति नहीं दिखाई थी। सो सेना में भर्ती हो गए। मानव जाति के प्रति उनके हृदय में एक घृणा सी है। हत्या को उन्होंने अपना स्वभाव बना लिया है। अब तक वे एक शांतिकालीन सैनिक की भांति कभी नहीं रह सके। जहां कहीं भी युद्ध होने का समाचार सुनते थे वहीं वे पहुँच जाते थे। हत्या, हत्या यही उनके जीवन का मोद था।

नौकर ने आकर पूछा—हुजूर का डिनर कब होगा? जी में आया कि इसी नौकर के रक्त से कमरे का फ़र्श लाल कर दें कि बोले—आठ बजे।

नौकर जब कमरे से बाहर जा रहा था तो कैप्टेन पांडे अपने मन में सोच रहे थे कि वे अधिक समय तक यहां नहीं रह सकते उन्हें अपनी छुट्टी कैंसेल करा देनी पड़ेगी जहां हत्या करने को न मिले वह भी कोई दुनिया है।

ये बादल जो आसमान घेरे हुए थे कभी से, सो अपना भार आप न संभाल सके, गिरे पड़े तो आंखें जैसे रो पड़ी हों।

रात में जब नौकर खाना लेकर आया तब वर्षा बन्द हो चुकी थी। पर्दा हटाते ही कैप्टेन ने देखा कि पतिंगे बाहर लान पर खड़े बिजली के खम्भे को आच्छादित किये हैं।

खाना वह खाने लगा तो देखा कि कमरे के नीचे बल्ब के निकट दो एक पतंगे उड़ रहे हैं...... ।

कि दीवाल पर दृष्टि गई तो दिखाई पड़ गई एक छिपकिली।

कैप्टेन की—आंखें क्रोध से जल उठीं नौकर को डांट कर उसने कहा—यह कमरा साफ़ नहीं किया गया, यह छिपकिली कैसे यहां आ गई।

भय से नौकर कांप उठा, बोला—साफ़ तो हुजूर किया था यही वर्षा के कारण...... ।

कारण वह नहीं सुनना चाहता सो कह दिया—अभी इसको बाहर करो।

नौकर ने हाथ के झाड़न से उसे भगा कर कमरे के बाहर कर दिया तो कैप्टेन ने आज्ञा दी—मार डालो इसे। जैसे हत्या कुछ हो ही न।

किन्तु नौकर सोचता रहा, अजीब निर्दय आदमी हैं; जिसे देखो उसी की हत्या करने को उद्यत। और जब छिपकिली रेलिंग पर से नीचे कूद पड़ी तो नौकर ने वापस जा कर कैप्टेन से कह दिया कि छिपकिली उसने मार डाली है।

कैप्टेन के मुख पर संतोष झलक उठा। उस दिन रात में उसने बहुत शराब पी।

इसी दिन दोपहर को वह फिर खाना खा रहा था! नौकर कुछ सामान लेने गया था कि कमरे के एक तिरस्कृत कोने में फिर छिपकिली दिखाई दी।

तो क्या यहां बहुत सी छिपकिलियां हैं? क्षण भर वह उसे ध्यान से देखता रहा। कल ही वाली होगी। नौकर झूठ बोला! उसने छिपकिली को जाने दिया था। कितने झूठे होते हैं ये नौकर भी—

खाना छोड़कर वह उठा मेज़ पर से पिस्तौल उठाई और छिपकिली पर निशाना लगा दिया। दीवाल में एक छेद हो गया और छिपकिली भय से कांपती हुई दीवाल पर भागी जा रही थी।

नौकर वापस आ गया था। सोचा कि नौकर से कह दे इस छिप-किली को मार कर मेरे पास ला पर जिसे उसकी गोली नहीं मार सकी उसे वह मार ही कैसे सकता है ?

क्षण भर तक वह उसी तरह छिपकिली को देखता फिर कुर्सी पर बैठ कर खाने लगा।

उस दिन खाने में उसका मन न लगा। मांस अच्छा न बना था मांस के छोटे २ टुकड़े उसने फर्श पर बिखेर दिये। और कुछ अधपेट ही जा कर पलंग पर लेट गया।

थोड़ी देर के पश्चात उसने देखा कि छिपकिली मांस के उन टुकड़ों को खा रही है।

वह देखता रहा। कितना साम्य है उसके और इस छिपकिलीं के जीवन में। कितना बड़ा ख़तरा उठा कर वह अपनी जीविका उपार्जन करती है, उतना ही जितना कि वह !

नहीं छिपकिली भी एक सैनिक ही तो है। अकेली निर्भय तभी-तो वह मेरा सामना कर रही है।

कैप्टेन पांडे ने वीर तथा साहसी शत्रु का भी आदर किया है। देखा कि छिपकिली उसकी छाती पर सिर रखे सो रही है।

दूसरे दिन जब कैप्टेन खाने बैठा तो उसकी दृष्टि कमरे के चारों ओर कुछ खोजने लगी। छिपकिली एक स्थान पर बैठी जैसे उसकी ही ओर याचना-पूर्ण दृष्टि से देख रही हो।

जाने कैसा लगा कैप्टेन को ? सोचा आखिर यह मुझसे इतना डरती क्यों है ! क्यों नहीं निकट आती ?

सोचता हुआ खाता रहा और मांस के छोटे छोटे टुकड़े जमीन पर गिराता रहा था।

छिपकिली क्षण भर तक सब देखती रही जैसे कुछ समझने का प्रयत्न कर रही हो; फिर बढ़ कर फर्श पर आई और मांस के छोटे छोटे टुकड़ों को खाने लगी। कैप्टेन एक मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा।

और फिर उस दिन से उसका यह काम हो गया कि जब खाने बैठता तो छिपकिली को भी कुछ न कुछ अवश्य दे देता और वह

छिपकिली भी जैसे सब कुछ समझ रही हो। सदैव ही वह कमरे में चक्कर काटती रहती निर्भय सी।

उस दिन कैप्टेन पांडे ने अपने कुछ सैनिक अफ़सर मित्रों को आमंत्रित किया था। भोजन और शराब का दौर चल रहा था; तभी सहसा कैप्टेन को छिपकिली का ध्यान आया। देखा तो कमरे में कहीं वह दिखाई न दी। कैप्टेन का हृदय जैसे बैठा था उठ कर वह कमरे में टहलने लगा कि देखा बाहर रेलिंग के खम्भे पर छिपकिली बैठी है। कैप्टेन के मुख पर प्रसन्नता बिखर उठी। उसके जीवन का आह्लाद जैसे आंखों से उभर आने को हो।

दौड़ कर वह खम्भे के पास आया कि छिपकिली को अपने हाथों में लेकर हृदय में छिपाले कि छिपकिली दौड़ कर उसके पास आ गई।

हँसते हुए कैप्टेन ने कहा—ओह तुम आज इन मेहमानों को देख कर डर रही हो कोई बात नहीं, आओ।

और वह जो कमरे की ओर मुड़ा तो छिपकिली भी उसके पीछे हो ली।

कैप्टेन मांस के टुकड़े नीचे गिरा रहा था।

निकट ही बैठी कर्नल की अंगरेज पत्नी ने कहा—'कैप्टेन! यह छिपकिली तुमने पाल रखी है क्या?

पाल तो उसने नहीं रखी है पर आ अवश्य ही गई है वह उसके जीवन के निकट, पर उत्तर वह क्या दे? सो कुछ न कह बोला—और चाय लीजिए।

कैप्टन की छुट्टी समाप्त हो रही थी। उसे फिर युद्ध-भूमि में जाना होगा। सोच कर वह जाने क्यों कम्पित सा हो उठा। हत्या फिर हत्या! किन्तु अब वह जाने क्यों नर-संहार से दूर रहना चाहता था। कितनी ही बार उसे अपने इस जीवन से घृणा सी हो उठी थी। कारण उसे स्वयं भी कुछ न समझ पड़ता था परन्तु फिर भी न जाने क्यों उसे अपने प्राणों के प्रति एक मोह उत्पन्न हो उठा था, और जिसे अपने प्राणों के प्रति मोह होता है वह दूसरे का प्राण लेने में भी संकोच करता है।

जब कभी कैप्टेन छिपकिली की ओर देखता तो उसे ऐसा जान

पड़ता जैसे छिपकिली का जीवन पहले अत्यन्त नीरस था परन्तु अब उसका स्नेह पा कर वह कुछ दूसरी हो उठी है।

वह दूसरी हो गई हो या नहीं पर कैप्टेन अवश्य ही अनुभव करता है कि वह दूसरा हो गया है। उसे भी कोई जीवन में प्यार करने वाला है, वह भी अपना सम्पूर्ण प्रेम किसी पर बिखेर सकता है।

तभी उस दिन जब वह शाम को घूम कर लौट रहा था तो मन में सोचने लगा छिपकिली को वह अपने साथ युद्ध क्षेत्र में भी ले जायगा। आज ही उसने छिपकिली को रखने के लिए एक सुन्दर पिंजड़ा खरीदा था। मार्ग भर वह यही सोचता रहा।

होटल पहुँचने पर उसने छिपकिली की खोज की किन्तु वह कहीं कमरे में न थी कैप्टेन को हँसी आ गई—कहीं छिपी होगी और मुझे इतना परेशान कर रही है।

भोजन आ गया तो खाने बैठ गया। सोचा छिपकिली जहां कहीं भी होगी अब आती ही होगी।

मांस के टुकड़े तोड़ कर फ़र्श पर गिराने लगा; पर छिपकिली न आई, न आई।

सो वह खा भी न सका। दो एक ग्रास के पश्चात वह न खा सका और सारा भोजन टुकड़े टुकड़े करके पृथ्वी पर बिखेर दिया पर छिपकिली न आई।

वह उठ कर पलंग पर लेट गया। जाते समय नौकर ने दरवाजा बाहर से बंद कर लिया पर कैप्टेन की दृष्टि दरवाजे पर ही लगी रही। सम्भव है अब आती हो उसकी छिपकिली, कि सहसा उसकी दृष्टि किसी वस्तु पर पड़ी।

एक झटके से उठ कर वह द्वार के निकट आया। एक छोटा सा ताजा शव किवाड़ों के बीच में चिपका था। छिपकिली !!

तो यह यहां थी, दरवाजा खोलने में दब कर मर गई।......कितना स्नेह था। शायद नित्य ही वह किवाड़ों के पास बैठी उसके आने की प्रतीक्षा करती थी।

और अब कौन करेगा उसकी प्रतीक्षा ! इस हत्यारे की !

कैप्टेन का हृदय जो मथ उठा तो दो बूँद आंसू छिपकिली के शव पर गिर पड़े—जैसे यही उसका अर्घ्यदान हो।

कहीं पता न लगा। और उस घटना के कुछ दिन बाद तो उसको पति का घर छोड़ना पड़ा वहां से कहां कहां भटकती हुई मालती आज इस्मत बनी पैसों के लिए वही बेच रही है जिसे उसने एक दिन जमींदार के लड़के को देने से इन्कार कर दिया था।

आंसू झर-झर झरने लगे। जब उसने आंसू पोंछ जी हलका कर आंख उठाई तो देखा ग्राहक चला गया था और उसके पैरों के पास दस दस रुपये के पांच नोट बिखरे हुए उसका परिहास सा कर रहे थे।

अँगूठी

जो पत्थर शीशे पर गिरा तो वह चिटक कर टूट गया। कई बार शीशे को टूटते देखा है मैंने। किन्तु दिल को टुकड़े टुकड़े होते यह पहली बार ही देखा है, अनुभव किया है। और टुकड़े होकर यह शीशे के टुकड़े मेरे कलेजे में कैसे चुभ रहे हैं? कि एक असह्य सी टीस उठ रही है।

आज वर्षों बाद वह घटना फिर मेरे जीवन में हरी हो उठी है। वर्षा के अभाव में शायद जो अंकुर कुम्हला उठे थे वे अब इस मृत्यु की वर्षा से हरे भरे हो गये। पाँच वर्ष बीत गये पर मैं इतना दुःखी तो कभी न हुआ; उसकी याद ने इस प्रकार मुझे विह्वल कभी न किया; किन्तु आज जो कलेजे से यह धुआँ उठ रहा है वह मेरे जीवन में भर कर एक घुटन सी पैदा कर दे रहा है।

पाँच वर्ष होगये उन दिनों मैं बी० ए० का विद्यार्थी था। जीवन में अल्हड़पन, और आकृति पर मस्ती का आलम था। घूमने का मैं सदा शौकीन रहा हूँ। पिता रेलवे में गार्ड थे। बचपन में वे मुझे अपने साथ में रखते थे। शायद इसी कारण जीवन में यात्रा करते रहना मुझे प्रिय है।

बड़े दिन की छुट्टियाँ हो गईं थी। बड़े भाई पिता की मृत्यु के बाद झाँसी में नौकर हो गये थे इसलिये वे वहीं रहते थे। इलाहाबाद

में तो मैं अपनी माँ के साथ रहता था। भाभी बड़ा स्नेह करती हैं छुट्टियों में लिखा—यदि तुम आओ तो मैं झाँसी में रहूँ नहीं भइया को लिख दूँ वे लखनऊ लिवा ले जाँय।

कहीं जाने के लिये तो मैं हर समय तैयार रहता हूँ। सो लिख दिया—बड़े दिन की छुट्टी में मैं आ रहा हूं।

बड़े दिन क छुट्टी हो गई। कानपुर की गाड़ी सुबह ही को जाती है। सो चार बजे रात को ही स्टेशन जाना पड़ा। शीत के मारे सारा शरीर जड़ सा होगया। स्टेशन पहुँच कर मैंने टिकट लिया और ट्रेन में जाकर बैठ गया। गाड़ी यहीं से बनती थी सो भीड़ अभी कम ही थी। एक वर्थ पर मैंने अपना बिस्तर लगा लिया। प्लेट फार्म की ओर मुँह करके लेट गया; शायद नींद आ जाय। तभ देखा एक परिवार ने आकर सामने की बेंच पर अधिकार जमा लिया है। एक सुन्दर सी लड़की ठीक मेरे सामने बैठ थी, बगल में उसके घर की और दो तीन औरतें बैठ थी। पाँच छः वर्ष का एक लड़का था—शायद सब को अपना बना लेना उसका स्वभाव था। उसे जो कहीं जगह न मिली तो झट मेरे पास आकर बैठ गया। उठना ही पड़ा।

गाड़ी जब चलने लगी तो मैंने देखा सामने बैठे उस सौन्दर्य को—सुन्दर थी। गोल चेहरा, कृश शरीर, बड़ी-बड़ी मद भरी आँखें जैसे कुछ जादू टोना फूँकना जानती थी। मुझे अपनी ओर देखते देखा तो लजा कर सिर नीचे डाल लिया। मैं बालक से बातें करने लगा। सुधीन्द्र नाम बताया अपना उसने अपने मामा जी के यहाँ जा रहा है; वे बङ्गले में रहते हैं। वह कई महीने रहेगा।

पर जीजी पिता जी के साथ लौट आयेगी उनका स्कूल जो है। मेरी आँखे उठकर जो सामने बैठी लड़की पर पड़ी तो देखा वह मुस्करा रही थी; आँखे टकराई और फिर लौट बालक के ऊपर टिक गई। मैंने पूछ ही तो लिया—कौन जीजी !

'अरे शची जिज्जी न ?' फिर उसकी ओर देख लड़के ने कहा—यह है बैठी यह। यही है हमारी शची जिज्जी।

शची जिज्जी शायद रेल की सीटी सुन रही थी।

मैंने सिगरेट निकाल कर जलाया। धुयें का एक अम्बार मुह से

निकाल फेंकने लगा तो देखा शायद उसे बुरा लग रहा था; मुह बन रहा था। सो मैंने सिगरेट गाड़ी के बाहर फेंक दी। देखा उसका चेहरा खिल गया था शायद वह कह रही थी—तुम बड़े अच्छे हो।

अगले स्टेशन पर उनके साथ के मर्द उतर एक सुराही में पानी भर लाये तो मां ने लड्डू निकाल सब को दिये; मैं उठकर दूसरी ओर चला गया था जब लौट कर आया तो सब खा पी चुके थे अपनी जगह पर बैठ गया। आड़ लगाने को तकिये से हाथ लगाया तो कुछ हाथ से छू गया। यह है क्या पीछे मुड़ तकिया उठा कर देखा तो चार लड्डू थे। अजीब बात है; तकिये में रुई भरवाई थी पर ये लड्डू जो निकल रहे हैं। क्षण भर सोच जो मुँह फेरा तो—उसने मुस्करा दिया।

अच्छा आप लड्डू खिला रही हैं ?

मुंह फेर चुपचाप खा लिया और अब पानी कहाँ मिले। इधर उधर देखा—पानी पीना बहुत आवश्यक था पर पानी कहीं दिखाई न पड़ रहा था। उनकी ओर देखा तो जैसे वे समझ गई। उठ कर उन्होंने सुराही से पानी उड़ेल लिया और फिर उसे मेरी सीट के नीचे खिसका दिया। जैसे वह कह रही थीं इसी तरह तुम भी पी लो। पर न पी सका तो उन्होंने माँ की ओर देखा वे पिता के साथ बातें कर रही थीं तुरन्त गिलास में पानी उड़ेला गया और मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने सोचा आप को मेरी जरूरतों की बड़ी चिन्ता है। पीकर मैंने गिलास नीचे रख दिया तो उन्होंने उसे धोकर सुराही ढाँक दी। मन में सोचने लगा यह नारी क्षण भर में ही इतना मधु क्यों बिखेरे दे रही है।

सिगरेट पीने की बहुत इच्छा थी पर कैसे पीऊँ बारबार जेब से पैकेट निकाल कर देखता फिर रह जाता। मेरी अवस्था पर उन्हें हँसी आ गई। एक पुस्तक निकाल कर पढ़ने का बहाना करने लगीं। मेरी दृष्टि जो उनकी ओर पड़ी तो धीरे से बोलीं—पी सकते हो।

ओह! आप की आज्ञा मिल गई। सिगरेट मैंने तुरन्त जलाई और पीने लगा। उनकी ओर दृष्टि की तो आँखों ही आँखों में हँस दी।

किताब बन्द कर रख दी गई। सिगरेट पीते पीते मैंने उगँली से अपनी अगूँठी निकाल ली और हाथों से खेलने लगा।' देखा तो उन्होंने भी अपनी अँगूठी उतार ली और खेलने लगीं। छिटक कर अंगूठी मेरी बर्थ के नीचे आ गिरी। झट मैंने उनकी अँगूठी उठा ली। क्षण भर देखता रहा फिर पहन ली। अपनी अँगूठी मैं उसी तरह लिये रहा तो उन्होंने किताब से मुह की ओट किये—अपनी खाली उँगली की ओर इशारा किया। मैंने अपनी अँगूठी गिरा दी। उन्होंने उठा लिया। देखकर एक बार मुसकराई फिर पहन ली।

झाँसी जाने के लिये कानपुर में मुझे गाड़ी बदलनी थी सो उतरना पड़ा। उनकी आँखो में आत्म समर्पण था।। गाड़ी जब तक चली न गई मैं खड़ा देखता रहा। और जिस तरह वे जीवन में आई थी उसी प्रकार चली गई।

किन्तु आज पाँच वर्ष ने मुझे क्या से क्या कर दिया। बी० ए० पास हुआ, नौकर हुआ विवाह हुआ पत्नी मर गई। अब हूँ कि पागल सा एक स्थान से दूसरे स्थान का सफ़र करता रहता हूँ। उस दिन लखनऊ पहुँचा तो एक मित्र के यहाँ ठहर गया। खाना उनकी पत्नी परसने लगी तो उनकी उँगली में एक अँगूठी दिखाई पड़ गई। अरे ये! आँखें ऊपर उठा जो देखा तो वे मुस्करा रही थी। मेरी उँगली में पड़ी उन की वह अँगूठी जैसे सजीव हो उठी।

मित्र के बहुत आग्रह पर भी—खाना न खा सका और उसी रात चलने लगा तो अपने हाथ की वह अँगूठी उतार कर मित्र को देते हुए कहा इसे अपनी पत्नी को दे देना और चला आया।

पर अभी तार मिला है कि मित्रकी पत्नीने उसी दिन आत्म हत्या कर ली।

रेखा
प्रदीप
मीर

मानवेन्द्र बैठा कुछ लिख रहा था। सुबह की सुनहली किरणें उसके सुनहले बालों से खेल रही थी। और उसकी क़लम अभिराम गति से चल रही थी। मौली चाय लेकर कमरे में आई तो उसका साहस मानवेन्द्र के सन्मुख जाने का न हुआ। उसे जाने क्यों बड़ी लज्जा आती है। भैया के मित्र हैं, बचपन से ही दोनों जने साथ पढ़े हैं सो बड़ा अपनाया है। और आज जाने कितने वर्षों बाद मानवेन्द्र उनके यहाँ आया था, पहली बार जब वह आया था तब मौली बहुत छोटी थी और मानवेन्द्र उसके भाई के साथ इन्टर में पढ़ता था।

भाभी ने चाय ले जाकर मानवेन्द्र को दे आने को कहा तो वह लेकर आगई है पर साहस उसका उसके सन्मुख जाने का जब न हुआ तो वह द्वार पर ठिठक रही। मानवेन्द्र को जो कुछ आहट मिली तो फिर कर देखा। मौली पर्दे के आड़ में हो गई यौवन में भरी कोई नवयुवती है। क्षण भर मानवेन्द्र ने सोचा और कौन हो सकता है,

श्री है उसकी पत्नी है और उसकी बहिन मौली है। घर में कुल यही तो हैं ही। जरूर ही यह मौली है।

सो पुकारा—मौली।

मौली जैसे काँप उठी। पैर उसके डगमगाने लगे चाय का प्याला खनक उठा तो मानवेन्द्र ने फिर पुकारा—चाय लाई है, ले आ जल्दी भूख लगी है।

मौली ने साहस बटोर कमरे में प्रवेश किया और चाय मेज पर जल्दी से रख कमरे से बाहर भाग गई। सीढ़ी पर पहुँच उसने एक बार फिर मुड़कर देखा तो मानवेन्द्र टोस्ट काट कर खा रहा था। और मानवेन्द्र टोस्ट काट कर खाते हुए सोच रहा था कि यह मौली। जब मैं पिछली बार श्री के साथ आया था कितनी छोटी थी और अब वह मौली कुछ और ही है। चाय समाप्त हो गई तब वह फिर लिखने लगा पर अब लिखने में उसका जी न लगा। उसने एक सिगरेट जलाई और पीता रहा। पर फिर वह कुछ न लिख सका।

मानवेन्द्र लेखक है। लिखना उसका व्यवसाय है। सदा लिखता ही रहता है पर इस समय जैसे भाव सूझ ही न रहे थे।

श्री दफ्तर चला गया, जल्दी ही उसे जाना होता है इसलिए मानवेन्द्र ने उसके साथ खाना न खाया। दोपहर उसने भाभी को पुकार कर कहा—भाभी मेरा खाना भेजो।

भाभी रसोई में थीं सो मौली को थाली परस कर लानी पड़ी। थाली उसने लाकर मेज पर रख दी, तो मानवेन्द्र ने कुर्सी खिसका कर बैठते हुए कहा—भाभी खाना बना रही है क्या ?

'जी हाँ' मौली ने धीरे से कहा।

मानवेन्द्र खाने लगा; मौली खड़ी रही; जाने क्या लाना हो पर मानवेन्द्र की आँखें मौली पर ही गड़ी रहीं। मौली सिर नीचे डाले अपनी उंगलियों से सेमेंटेड फर्श खोदने का प्रयत्न कर रही थी।

सहसा मानवेन्द्र को जैसे कोई बात याद आगई बोला—मौली सुना तुम्हें कहानियाँ पढ़ने का बड़ा शौक़ है !

मौली सिर झुकाये चुप रही।

'तुमने मेरी कहानियाँ पढ़ीं' मानवेन्द्र ने पूंछा !

मौली ने सिर हिला दिया। मानवेन्द्र की कहानियाँ वह बहुत दिनों से पढ़ती आ रही है। उसे जो एक चीज मानवेन्द्र की कहानियों में मिलती है वह और किसी की कहानियों में नहीं मिलती इसीलिये तो पढ़ती है उन्हें मानवेन्द्र की कहानियाँ पढ़कर उसने उसके प्रति अपनी जो एक धारणा बना ली थी वह ठीक ही तो निकली—एक अस्त-व्यस्त सा युवक जिसे किसी चीज की परवाह नहीं जो मस्त रह कर ही जीवन बिताना जानता है।

जब कोई उत्तर ही न देता हो तो फिर उससे बात कैसे की जाय। सो मानवेन्द्र फिर खाने लगा। रोटी अब वह नहीं लेगा। चावल खाने लगा तो सहसा बोल उठा—तुम भी कहानियाँ क्यों नहीं लिखतीं।

क्या उत्तर दे मौली पर बोली, मुझे लिखना नहीं आता।

लिखना नहीं आता यह भी कोई बात है। अरे दो एक कहानी लिखो फिर लिखना आ जायगा।

मौली ने सोचा कि वह अवश्य ही लिखेगी।

तरकारी चुक गई थी सो पूछा—तरकारी और लाऊँ।

नहीं तरकारी नहीं चाहिए मानवेन्द्र ने कहा। और क्षण भर चुप रह बोला—क्या तुम समझती हो कि पुरुष के जीवन का लक्ष्य नारी है।

मौली इस अनुपयुक्त प्रश्न को सुन चौंक उठी। भला यह भी कोई प्रश्न है कि मानवेन्द्र फिर बोला—नहीं मैं यह नहीं मानता। नारी पुरुष के जीवन का लक्ष्य नहीं है पर हां स्त्री के जीवन का लक्ष्य पुरुष अवश्य है।

पानी पी वह खिड़की की ओर हाथ धोने चला गया तो थाली ले मौली कमरे से बाहर चली आई।

मानवेन्द्र को आये तीन चार दिन हो गए। इस बीच में उसके अल्हड़ स्वभाव और मनमौजी बातों ने सबको अपने निकट बना लिया है। मौली मानवेन्द्र को जब देखती है तो लजा जाती है पर जैसे वह देखते उसे बराबर रहना चाहती है। उसका सारा प्रबन्ध मौली ही करती है और शायद मानवेन्द्र भी यही चाहता है।

उस दिन दोपहर से ही बादल घिरे थे पर भाभी को जैसे कुछ सूझता ही नहीं शाम श्री से सिनेमा चलने का हट करने लगी। बाध्य हो श्री सब को ले सिनेमा चला। फिल्म देख कर वे लौट रहे थे। श्री और भाभी पीछे बैठी थी और मौली और मानवेन्द्र तांगे के आगे की ओर। फिल्म पर बात चली तो मानवेन्द्र ने कहा—यह निर्माता औरत को शायद न समझ सकेगें।

मौली ने आश्चर्य और संदेह से उसकी ओर देखा जैसे पूछ रही हो तुम्हीं कौन समझते हो।

हवा जोर से चलने लगी तो मौली की साड़ी का कोट उड़ कर मानवेन्द्र के अंक में आ गया। अनजान में ही उसे हाथ में ले लिया और रेशमी साड़ी के छोर के साथ खेलता रहा। घर पहुँचते पहुँचते पानी बरसने लगा। मानवेन्द्र अपने कमरे में जा जब लेट गया तो उसके मस्तिष्क में मौली का कोमल सौंदर्य बस रहा था कमरे की बिजली उसने जलती ही छोड़ दी।

रात जब मौली की नींद खुली तो मानवेन्द्र के कमरे की बिजली जलती देख उधर आई पानी बंद होगया था सो सर्दी कुछ बढ़ गई थी। देखा तो मानवेन्द्र हाथ पैर सिकोड़े सो रहा है शायद सर्दी लग रही थी सो अपने कमरे से जा अपनी रेशमी चादर उठा लाई और उसे उढ़ा दी।

सुबह जब नींद खुली तो मानवेन्द्र ने देखा कि वह रेशमी चादर ओढ़े है। पहचाना तो ज्ञात हुआ कि मौली की है। तो शायद रात को वह उढ़ा गई थी। सोचता रहा फिर चादर तहा कर तकिये के नीचे रख दिया।

दिन में भाभी को कोई जरूरत पड़ी तो मौली से उसकी रेशमी चादर की मांग हुई कैसे कहे मौली वह उसे मानवेन्द्र को उढ़ा आई थी। सो थोड़ी देर बाद अपने कमरे से लौटी और कह दिया भाभी वह तो नहीं मिल रही है। भाभी ने उसे अभी कल ही तो देखा था। घर में भी खोज हुई पर रेशमी चादर न मिली।

मानवेन्द्र खोज तलाश सुनता रहा और सोचता रहा।

चादर उसने मौली को देनी चाही पर उसने कहा अब तो सब

को यह मालूम हो गया है कि चादर खो गई है इसलिए उसे वह अपने ही पास रखे रहे ।

चलने लगा तो मौली ने मानवेन्द्र को बचन दिया था कि वह सदैव ही उसे अपने हृदय में स्थान दिये रहेगी। मानवेन्द्र जहां रहा रोजी से लगा वह श्री से मौली के साथ विवाह करने का प्रस्ताव करेगा। जानता है श्री कभी इनकार नहीं कर सकता।

दिन बीत चले पर मानवेन्द्र अब भी उसी प्रकार रवाना वरोश है अभी उस दिन उसे श्री का पत्र मिला कि मौली का बिवाह निश्चित हो गया तो उसकी सोई स्मृतियां फिर जाग उठी। उसने बक्स से चादर निकाली उसे देखता रहा और फिर उसे एक पैकेट बना पोस्ट आफिस भेजा पार्सल कर दिया।

विवाह हो चुका था। मौली को बि[illegible] के लिये तैयार किया जा रहा था तभी मौली के नाम पोस्टमैन पार्सल ले आया। भेजने वाले का उस पर कोई पता न था। मौली ने पार्सल ले लिया; खोला तो रेशमी चादर देख उसका कलेजा दो टूक हो गया और वह मूर्छित होकर गिर पड़ी।

चाय की केटली

मेरा एक मित्र है मानस। उस दिन हम दोनों चौक गए तो कबा-ड़ियों की दूकान की ओर भी चले गए एक खाली सा मैदान है दोनों ओर कबाड़ियों की दूकानें हैं पुरानी किताबें, एक टूटा सा ग्रामोफोन, चाय के कुछ प्याले लोहे की पुरानी कीलें, शीशिया आदि रक्खी हैं। बूढ़ा कबाड़ी यह एक ज़माने से पुराने पहिरे हुए कपड़े सस्ते दामों बेंचा करता है—कहता है किसी ग्राहक को पा कि साहब आप क्या कहते उस कमीज के लिए अरे अभी इसको खरीदने जाइए तो पता लगे सात रुपये गज से कम तो मिल ही नहीं सकता और अभी पहनी ही कितने दिन की है। मुश्किल से महीना भर। डेढ़ लूंगा साहब।

और फिर ग्राहक के हाल पर रहम खा वह उसे सात आने में दे देता है। चाय पीने का शौक है पर आज कल चीनी के बर्तनों का मोल तो करना भी कठिन है और फिर मुझ ऐसे सीमित साधन वाले के लिए आज सुबह महरी ने चाय की केटली तोड़ दी तो मैंने सोचा चलो बिना केटली ही काम चला लूंगा। पर जो बड़े मियां की दूकान पर यह केटली दिखाई पड़ गई तो रुक गया। बिलकुल मेरी फूटी केटली सी है। जैसे उसी सेट की हो। लेने का लोभ रोक न

सका। मोल भाव किया तो चार आने में तै हो गया। ले लिया।

घर आया तो कई मित्र आ गए। घर में मैं अकेला रहता हूँ सो जब मित्र लोग आ जाते हैं तो चाय अपने हाथ से ही बनानी पड़ती है। चाय बनाकर ट्रे मेज पर रख दी। मित्र लोग चाय पीकर जब चले गए तो मैं भी कमरे का ताला बंद कर होटल चला गया। खाना मैं वहीं खाता हूँ।

लौटा तो बड़ी रात हो गई थी। राह में एक मित्र मिल गए थे। उनके साथ बहुत समय लग गया। दरवाजा खोल बिजली जलाई और चारपाई पर जा लेट रहा। ट्रे अब भी उसी तरह मेज पर रखा था। देखा तो ऐसा जान पड़ा जैसे यह केटली सबके बीच उभर कर आ रही है। मुझे अपने सौदे पर प्रसन्नता हुई। मेरी पहली केटली टूट गई थी पर उसका कोई अफसोस अब मुझे न था।

नींद आने लगी तो बिजली बुझा सो गया।

रात नींद खुली तो बाहर कुछ खटका सा उठकर बाहर जाने लगा तभी मेज से धक्का लगा। खटाक-का-झन्न-न्!

मेरा शरीर सुन्न हो गया कमरे की पक्की फर्श पर गिर सारा का सारा सेट टूट गया होगा। मुझे अपनी मूर्खता पर खीझ आ रही थी क्यों न मैंने ट्रे को उठाकर आल्मारी पर रख दिया मुझे सोचना चाहिये था कि सम्भव है रात में उठूँ तो मेज से टकरा कर इन प्यालों को तोड़ सकता हूँ।

जाकर बिजली जलाई और देखा तो फर्श पर चीनी के प्यालों के टुकड़े पड़े थे बिल्कुल सब चूर चूर। केटली भी एक ओर पड़ी थी। छः प्याले, ६ डिश, मिल्क पाट, शुगर पाट सभी चूर चूर हो गए थे। सावधानी से मैंने केटली को उठाया। आश्चर्य वह बिल्कुल साफ बच गई थी।

इतने बहुमूल्य सेट के टूट जाने का दुःख केटली को सुरक्षित देख जाने क्यों कम हो गया।

पर मैंने निश्चय कर लिया कि अब टी सेट नहीं खरीदूँगा। खरीदा भी नहीं। कई महीने बीत गए। केवल केटली आल्मारी

पर रखी रहती थी। उससे और कोई काम लिया ही नहीं जा सकता था।

एक दिन मेरे मित्र आये तो केटली को देख कर बोले—यार कामरूप, तुम्हारे पास तो केटली बेकार ही पड़ी है। नहीं मुझे दे दो कल मेरी केटली टूट गई और यह बिल्कुल उसी सेट की है।

कह दिया—ले जाइए मेरे पास तो बेकार पड़ी है।

पर दूसरे दिन वे फिर उसे लौटा गए—कहा, साहब कल नौकरानी की गलती से सारा सेट नष्ट हो गया। सौभाग्य से आपकी केटली भर बच गई। सो अब तो मुझे दूसरा सेट खरीदना ही पड़ेगा यह सोच केटली लौटा रहा हूँ।

मुझे आश्चर्य हुआ। केटली शायद मेरे पास से जाना नहीं चाहती।

एक दिन दोपहर को घर में बैठा था चीनी मिट्टी का बर्तन खरीदने वाले ने आवाज़ दी सहसा मेरी दृष्टि केटली पर पड़ गई उसे बुला लिया और केटली देकर अंगरेजी के मासिक पत्र की पुरानी कापी खरीद ली। सोचा वह केटली यहाँ रखी रहती तो दुःख ही तो देती थी सेट के टूटने की याद दिला कर।

बरसात आ गई थी। नौकरानी रखली थी। खाना अब घर पर ही बनता है। उस दिन नौकरानी आई बोली—बाबू नमक रखने के लिए कोई बर्तन हो तो ठीक पड़े सारा नमक पानी हुआ जा रहा है।

मैंने चार आने पैसे फेंक दिए कह दिया—जो बर्तन ठीक पड़े वह ले लेना।

दूसरे दिन खाने बैठा तो नजर खिड़की पर पड़ी। आश्चर्य से धक् रह गया। उठकर निकट गया। वही केटली थी कितने महीने बाद वह आज फिर मेरे घर में आ गई। यह महराजिन ने देखा तो पूछा—क्या बात है बाबू जी, यह केटली देख रहे हैं। इसी को मैं नमक रखने के लिए खरीद लाई हूं। अच्छी है न?

'हाँ' मैंने कहा और खाना खाने लगा।

महराजिन छोड़ने लगी तो मैंने सोचा-होटल में ही खाना खाना

ठीक है। यह रोज रोज़ का झंझट कौन करे सो सब सामान महराजिन को दे दिया। केटली भी वे अपने साथ लेती गई।

कई वर्ष बाद मैं बदल कर कानपुर आ गया! एक दिन अपने कमरे में बैठा था तो एक वृद्ध स्त्री ने प्रवेश किया। चेहरा कुछ पहचाना सा जान पड़ रहा था देखता रहा उसने कहा—बाबू जी मैं महराजिन जो आगरे में आपका खाना बनाती थी।

स्मरण हो गया हाल चाल पूँछा—यहाँ कैसे महराजिन।

तो उसकी कथा छलक पड़ी बोली—बाबू आपके यहाँ से छोड़कर अपने घर वाले के साथ मैं यहाँ आरही थी तो ट्रेन पर हमें एक लकड़ी का बक्स मिल गया उसे ले हम चले आये। उसमें वहुत से प्याले आदि चाय पीने के कई सेट थे एक सेट में एक केटली कप थी। मैंने आपकी दी हुई केटली से इस सेट को पूरा कर दिया। हमने सोचा इतने प्याले आदि जब है तो क्यों न हम चाय की दूकान खोल दें।

सो एक छोटी दूकान लेकर खोल दी शीघ्र ही दूकान चल निकली हमारी आमदनी अच्छी खासी थी। दिन आराम से कट रहे थे। हमारे सामने ही चाय की एक पुरानी दूकान थी। उसका व्यापार टूट रहा था सो वह हमसे ईर्षा करने लगा। एक दिन उसकी मेरे पति से लड़ाई हो गई। बस दूसरे ही दिन हमारे यहाँ चोरी हो गई। हमारे सभी चीनी के बर्तन वे उठा ले गए। उनमें आपकी दी हुई वह केटली भी थी।

मेरे पति चोरों के पीछे दौड़े तो फिसल कर गिर पड़े उनको चोट लग गई। वह चोट अच्छी न हो सकी और अंत में ६ महीने के बाद उनकी भी मृत्यु हो गई। हमने जो कुछ पैदा किया था वह भी उनकी बीमारी में खर्च हो गया। तब से मारी मारी फिर रही हूँ।

मुझे दया आई तो मैंने उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया।

उस दिन शाम को घूमते-घूमते निकला तो पार्क रोड की एक चाय की दूकान पर चाय पीने बैठ गया। नौकर ट्रे लाकर रख गया

तो मैं ट्रे की केटली देख आश्चर्य में पड़ गया। यह मेरी ही केटली थी।

चाय मैंने नहीं पी जब होटल वाला अंदर गया तो केटली ओवर कोट के नीचे छिपाये मैं होटल से बाहर निकल आया।

कई महीने बाद उधर गया तो देखा वह होटल अब नहीं है पूछा तो मालूम हुआ सहसा उन्हें व्यापार में बड़ी हानि हुई और होटल बंद कर देना पड़ा।

केटली मेरे पास अब भी है। सोचता हूँ अब इसे किसी को न देना ही ठीक है।

——

पा
ग
ल
प
न

और जब पिता की भी मृत्यु पागल खाने में हो गई तो लक्ष्मी बहुत चिन्तित तथा दुखित हुई। तीन वर्ष पूर्व मां मर गई थी और तब से पिता लक्ष्मी और रमेश का पालन करते थे परन्तु गत वर्ष पिता भी पागल हो गए नव महीने तक पागल रह कर वे लक्ष्मी और रमेश को अनाथ कर इस दुनिया से चले गए। शायद यह संसार ही उन्हें नहीं समझ सका।

लक्ष्मी की उस समय अवस्था पन्द्रह सोलह वर्ष की वह हाईस्कूल में पढ़ती थी और रमेश बीस वर्ष का युवक था। बी० ए० उसने पास किया था। पिता अधिक सम्पति नहीं छोड़ गए थे और जो थी भी उसे उनकी बीमारी में ही खर्च कर देना पड़ा इसलिए रमेश ने नौकरी करली।

पड़ोस के डाक्टर की लड़की से लक्ष्मी की बहुत पटती है। उस दिन लक्ष्मी उसके यहां गई हुई थी तो डाक्टर साहब किसी मरीज़ के

सम्बन्ध में अपने कम्पाउंडर से बातें कर रहे थे । उसमें पागलपन के कुछ चिन्ह दिखाई पड़ने लगे थे सो डाक्टर साहब ने राय दी कि शीघ्र ही उसका इलाज किसी विशेष डाक्टर से कराया जाय। मरीज के माता पिता भी पागल होकर मरे थे सो डाक्टर साहब का कहना था कि पागलपन पैतृक बीमारी है और पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है ।

लक्ष्मी सुन कर कांप उठी। पिता उनके पागल थे तो वह और रमेश दादा भी कभी-कभी पागल अवश्य होंगे और फिर उनके बच्चे भी पागल होंगे। ओह ! कितना भीषण ! उसके बच्चे पागल हों। नहीं वह यह नहीं सहन कर सकती। उसने निश्चय किया कि वह पागलों की संख्या की वृद्धि नहीं करेगी। पागल पन की हालत में मनुष्य को कितना कष्ट उठाना पड़ता है यह उसने अपने पिता के केस में देखा है।

घर आकर वह इस प्रश्न पर घन्टों विचार करती रही। फिर दूसरे दिन वह डाक्टर साहब के यहां पहुँची। उन्हें खाली देख पास जा खड़ी हो गई। लक्ष्मी को वे लड़की की ही भांति मानते हैं सो पूछा क्या है लक्ष्मी ?

लक्ष्मी ने उनकी ओर देखते हुए कहा—आप कहते थे केवल कि पागलपन पैतृक होता है ।

'हां' लक्ष्मी, यदि पिता पागल होगा तो पुत्र इस रोग का रोगी अवश्य होगा।'

'क्या इससे कोई बच भी सकता है ।' लक्ष्मी ने प्रश्न किया।

'क्या ! बच सकने की एक ही कही। अरे यह बात सब केसेज में नहीं होती पर सम्पादन की ६० प्रतिशत रहती है।

क्षण भर चुप रह लक्ष्मी ने कहा—ओह पागल होना; इससे अच्छा तो जो पागल हो उसे विवाह करके बच्चे उत्पन्न ही न करना चाहिए ।

डाक्टर साहब कुछ चौंके पर तुरन्त कह दिया हां ।

लक्ष्मी घर लौट आई पर उसने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो वह विवाह करके अपनी संतान को पागल होने के लिए नहीं पैदा करेगी। यही नहीं वह रमेश को भी इसके लिए बाध्य करेगी। उस दिन जब लेकर आया तो लक्ष्मी ने उससे विवाह न करने का

प्रस्ताव किया। लक्ष्मी के तर्कों को सुन कर रमेश कुछ देर सोचता रहा फिर विवाह न करने का वचन दे दिया।

घटना को ६ महीने भी न हुए थे कि रमेश ने एक स्त्री से विवाह कर लिया। लक्ष्मी खीझ उठी। रमेश से कहा तो उसने उत्तर दिया लक्ष्मी न हम पागल हो सकते हैं और न हमारी संतानें ही पागल हो सकती हैं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए।

लक्ष्मी क्रोध का घूट पी गई।

रमेश के विवाह के डेढ़ वर्ष होने आये पर अपनी भाभी से उसने कभी बात भी नहीं की। उसका विश्वास है कि उसकी भाभी नें ही रमेश को विवाह करने के लिए बाध्य किया होगा।

ओ जब उस दिन उसे ज्ञात हुआ कि उसकी भाभी गर्भवती है तो लक्ष्मी का क्रोध अत्यधिक भभक उठा। उसका यह भतीजा भी पागलपन की यंत्रणा में छटपटा छटपटा कर प्राण देने के लिए पैदा होगा। अपने कमरे को अंदर से बन्द करके वह सोचती बैठी रही। दृढ़ निश्चय से उसका मुँह लाल होगा—नहीं नहीं यह नहीं होने दे सकती। वह भाई और भाभी दोनों की ही हत्या कर देगी।

और रात जब रमेश आया तो उसने लक्ष्मी के सम्बन्ध में पूछा। रमेश की पत्नी लक्ष्मी से कुछ अप्रसन्न रहती है सो कह दिया—अपने कमरे में सो रही है।

रमेश ने कोई उत्तर न दिया। खा पीकर पतिपत्नी जब अपने कमरे में सोने लगे तो लक्ष्मी अपने कमरे से निकली। पिता के समय की एक तलवार घर में रखी थी। लाकर उसने तलवार निकाल ली ओ पैर उसके लड़खड़ा रहे थे; उन पर अधिकार करते हुए तलवार को कस कर पकड़ लिया और रमेश के कमरे के सम्मुख आई देखा तो पति पत्नी निकट ही निकट सोये हुए थे। लक्ष्मी में हिंसा खेल उठी। दोनों हाथ से उसने तलवार उठाई और सोते हुए दम्पति के गले पर भरपूर वार कर दिया। खच खच की एक आवाज हुई और कमरे में खून ही खून बहने लगा।

लक्ष्मी के ऊपर भी खून की छींटे पड़ी पर उसे जैसे इसका कुछ

ज्ञान ही नहीं। मेज़ से टेक लगा वह खड़ी होगई। सोचती रही कल वह गिरफ़तार होगी उसे भी फांसी हो जायगी और इस प्रकार पागल संतानों की वृद्धि से मुक्ति मिल जायगी।

मन में आया तो मेज के दराज को उसने खोल डाला। पत्रों का एक बंडल रूमाल में बँधा रखा था निकाल कर पढ़ने लगी तो मस्तक से पसीना छूटा पड़ा। उसके मां के प्रेम पत्र थे जो उसने अपने प्रेमी को लिखे थे। मां ने अपने प्रेमी से स्वीकर किया था कि उसके पति पूर्णतया नपुंसक है और इसलिए उसकी संतानों का सच्चा पिता वही है। यह स्वयं उसके पति को मालूम है।

ओह! तो वह अपने पिता की संतान नहीं थी। रमेश ने शायद यही पत्र पढ़कर विवाह करके संतान पैदा करने का निश्चय किया था। काश वह पहले ही इस सत्य को जान जातीं पर नहीं मां के कलंक छिपाने के लिए ही तो रमेश ने उससे कुछ नहीं कहा कितनी ही बार उसने लक्ष्मी को विवाह करने को राजी करने का प्रयत्न किया। लक्ष्मीं सोचती हुई क़मरे में खड़ी रही।

सुबह जब घर का दरवाजा न खुला तो मुहल्ले वालों को चिन्ता हुई। लाख पुकारने और खड़खड़ाने का भीं कोई उत्तर जब न तो पड़ोस वालों ने दरवाजा तोड़ डाला। अन्दर उन्होंने जाकर देखा कि रमेश तथा उसकी पत्नी बिछौने पर मरे पड़े है निकट ही तलवार खून से रंगी पड़ी है। और एक पगली कमरे में घूम रही है।

उसे देख कौन कह सकता था कि यह वही लक्ष्मी है।

कल होली है

कल होली है। साल भर का त्योहार सभी खुशी मना रहे हैं पर मेरे हृदय में जैसे एक ज्वाला सी जल रही है। कौन मचाये होली आज ही का दिन तो था। उसकी स्मृति को संजोते और पूरे एक वर्ष हो गए और इसी एक वर्ष के अन्दर मेरा संसार बना बिगड़ा और सब कुछ मिट गया।

गत वर्ष आज ही के दिन प्रातः जब मैं स्कूल से लौट रहा था देखा लड़कियों के स्कूल की एक गाड़ी जा रही है। लड़कियाँ उधम मचाये हुए हैं; कोई किसी के अबीर मल रही है तो कोई किसी के ऊपर गुलाल छोड़ रही है। गाल सभी के लाल हो उठे थे, आखिर उन्हें और लाल करने की आवश्यकता ही क्या थी। मैं बाईसिकिल पर गाड़ी के पीछे था कि मुझे देख लड़कियों का ऊधम बन्द हो गया, बगल से निकला तो देखा एक लड़की गाड़ी से बाहर मुँह निकाले हुए है। मुँह भर में अबीर है; मांग गुलाल से भरी है। बड़ा सलोना

सा तो मुंह था उसे इस प्रकार चित्रकारी कहने का शौक क्यों हुआ यही सोच मुझे हंसी आ गई।

वह शर्मा गई, मुंह उसने गाड़ी के पर्दे के भीतर कर लिया परन्तु गाड़ी पार भी नहीं कर पाया था कि मैंने देखा सफेद कमीज़ और सफेद पतलून पर लाल रंग बिखर गया है। क्रोध आया; आखिर यह कौन सी सभ्यता है कि राह चलते आदमियों पर रंग फेंका जांय।

मुझे रंग से सदा से चिढ़ रही है। होली के दिन के बाद या पहले यदि मुझ पर कोई रंग डाल दे तो यह बहुत ह बुरा लगता है। एक बार भाभी होली पर मायके में थी होली के दूसरे दिन मैं उनके यहां भेजा गया तो पहुँचते ही सबने मुझे रंग से शराबोर कर दिया। सिल्क का मेरा सूट खराब हो गया। भाभी पर मैं बहुत बिगड़ा। पर बेचारी कहती हीं क्या बोली–लाला जी, भाइ सूट का दाम मैं दे दूंगी, नाराज न हो।

सोचा आखिर यह लड़की है कौन जिसका इतना साहस। साइकिल से उतर पड़ा और कठोर आवाज में गाड़ीवान को पुकारने ही जा रहा था कि देखा वही पहले वाली लड़की फिर झांक रही। मुझे देखते देख उसने दोनों हाथ जोड़ दिये जैसे वही अपराधिनी हो।

अच्छा तो यह बात है हंसने का वह बदला लिया गया है।

पैडिल पर पैर रखा और साइकिल बढ़ाई कि पीछे से किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रख दिया। देखा तो रमेश था मेरा साथी है बड़ा हंस मुख सब कुछ हंसते-हंसते सह लेने वाला। कपड़े पर रंग देख साथ-साथ बाइसिकिल चलाते हुए उसने पूछा यह कहां पड़ गया यार।

पहले तो सोचा कि कौन बताये फिर बता ही दिया। सुन कर वह जी खोल कर हंसा बोला–यार, तुम बड़े समझदार हो मैं तो लड़कियों के स्कूल की गाड़ी से रंग डलवाने के लिए सिर के बल चलने को तैयार हूँ।

मुझे मजाक सूझा। बोला—अच्छा चल सिर के बल तो मैं वह पीछे गाड़ी आ रही है कह कर डलवा दूं।

अच्छा भावी भाभी इसी गाड़ी पर पढ़ने जाती है क्या उसने फिर मजाक किया।

अजी क्या बात करते हो पर कहता हूँ यदि तुम राजी हो तो मैं तैयार हूँ।

राजी तो मैं हूँ पर विश्वास कैसे करूं कि तुम रंग छुड़ा दोगे अजी कहता हूँ।

अच्छा पुंछवा दो।

बात पक्की हो गई हम गाड़ी आने की प्रतीक्षा में रुक गए। गाड़ी के साथ चलते-चलते मैंने कहा—ऐ मेरे ऊपर आकाश से रंग छोड़ने वाली देवी, यदि मेरे इन मित्र महोदय पर तुम रंग छोड़ सकों तो तुम्हारी सवारी के साथ यह सिर के बल चलने को तैयार हैं।

कोई उत्तर न मिला, कोई आकाश वाणी न हुई। पर जब हम बाइसिकल बढ़ा कर आगे चले जा रहे थे मुड़ कर देखा एक मुखड़ा हमारी ओर देख रहा था।

मेस्टन रोड के चौराहे पर हमें अलग होना था सो रुक गए। जब तक सुरेश जाय गाड़ी हमारे निकट आ गई। वह चला गया तो मैं पैदल ही चल पड़ा। गाड़ी भी उसी सड़क पर मुड़ी जिस पर हो कर मुझे जाना था। थोड़ी दूर आगे चल गाड़ी रुकी वह उतरी, रंग में लथ पथ; इठलाती सी किताबें लिए नीचे उतरी और अपने दरवाजे की ओर बढ़ी ही थीं कि जो मुझ पर दृष्टि पड़ी तो शरमा गई। सांकल खटखटाई, गाड़ी बढ़ गई थी, दरवाजा पार कर रही थी तो मैंने कहा—खैर आज तो तुमने रंग मुझ पर डाल दिया पर यदि कल तुम्हें रंग से नहला न दिया तो नाम नहीं। उन्होंने फिर कर मेरी ओर देखा और मुस्करा दीं।

दूसरे दिन प्रातः कुछ ध्यान न रह गया। शाम को एक सम्बन्धी के यहां मिलने जा रहा था सो साफ कपड़े पहन रखे थे कि सहसा ऊपर से किसी ने रंग की बाल्टी जैसे उड़ेल दी हो। घबड़ा कर ऊपर देखा तो वे खड़ी मुस्करा रही थीं भीतर भाग गईं। मैं खड़ा रह गया। घर लौट कर रंग लेकर उनके दरवाजे पर पहुँचा सोचा उन्हें बुलाऊंगा जरूर तभी जैसे वे प्रतीक्षा में ही बैठी थीं। गली की ओर का कमरा खोल बाहर झांकते हुए बोली आइए।

सोचा तुम अनुचित कर रहे हो पर कमरे में चला गया। मुस्कराती हुई बोली—बदला लेने आये हो।

'हां' मैंने उत्तर दिया।

तो, ले लो।' कह कर वे बैठ गईं मैंने उन पर रंग छोड़ दिया मेज पर अबीर, रखी थी उसे उठा कर लगाने चला तो रोक कर बोली—मैंने अबीर तो आप को नहीं लगाई।

मैं रुक गया तो उन्होंने अबीर लेकर मेरे मुंह पर मल दी। तभी भीतर से किसी ने पुकारा उष्मा!

आई कह कर वे भीतर भाग गईं तो मैं भी कमरे से निकल कर घर चला आया।

और उस के बाद हमारा परिचय बढ़ता गया। कहते हैं प्रेम की नमी जो पैदा हो जाती है तो कलेजे को समुन्द्र बना कर ही मानती है। हम एक दूसरे के इतने निकट हो गए कि रोज बिना देखे चैन न मिलता उसके घर वालों से भी मेरा परिचय हो गया था। मैं बहुधा उस के पास घंटो बैठा रहता हमने निश्चय कर लिया था कि हम अपना एक अलग ही संसार निर्मित करेगें।

परन्तु संसार की नींव ही पड़ने पाई थी कि उसका नाश हो गया। उनका विवाह उनके पिता ने लखनऊ में निश्चित कर लिया। आज उनकी तिलक की तिथि है भाई तिलक लेकर लखनऊ गए हैं और यहां उन्होंने विष खाकर आत्म हत्या कर ली।

और मैं सोचता हूं कल होली है।

———

दूसरे का सहारा

सांझ की बेला आज खाना जल्दी बनेगा। कुम्मी के बाबू जी को कहीं जाना है। सो रमा आंगन में बैठी तरकारी काट रही थी कि लल्ली बाहर से दौड़ती हुई आई और पीछे से गाले में हाथ डाल लटक गई। चाकू आलू से छटक कर बायें अंगूठे में लग गया तो कुछ लाल लाल बह निकला।

रमा को इन हाथों—छोटे छोटे कोमल हाथों का स्पर्श जैसे पहचाना हुआ है। बिना चोट की परवाह किए उसने लल्ली को गोद में ले लिया और अधरो को चूम कर बोली–लल्ली तू कहां गई थी। मैं तो समझी मेरी लल्ली कमरे में बैठी गुड़िया खेलती होगी।

लल्ली हँसती रही जैसे मां से वह बहुत चालाक हो। मां के गले की जंजीर को उंगलियों में ले खेलती हुई बोली—मां मैं करुणा के यहां गई थी, उसके पापा लखनऊ गए थे न; वहां से वे उसके लिए एक गुड्डा लाये हैं। बड़ा अच्छा है मां!

'हुँ' रमा ने कहा और बालिका को अंक में भर लिया।

'मां' तुमने नहीं देखा बड़ा अच्छा गुड्डा है।

तेरी गुड़िया से भी अच्छा।

'हां हां मां बहुत अच्छा। तुमने मेरे लिए अच्छी सी गुड़िया नहीं बनाई।'

'अब बना दूँगी, बहुत अच्छा।'

'नहीं मां तुम न बना सकोगी तुम मुझे वैसा ही गुड्डा मंगा दो।'

लल्ली के बालों पर हाथ फेरती हुई रमा बोली—अच्छा मंगा दूंगी। अब जब दादा जी जायेंगे न नखलऊ तो तेरे लिए भी वैसा ही गुड्डा ला देंगे।

बालिका प्रसन्न हो गई। उसी समय कुम्मी की माँ अपने कमरे से निकली। रमा को जो लल्ली के साथ बातें करते देखा तो जैसे तिनक उठी। उनके पति को आज ही बाहर जाना है और यहां अभी तरकारी भी नहीं कटी। बिगड़ कर बोली—दुलहिन, तुम्हें तो जैसे जरूरत की परवाह ही नहीं रहती। अरे वहां उन्हें तो जल्दी जाना है। आज साहब ने सात बजे बुलाया है। जाने कितनी देर हो वहाँ दफ्तर से बेचारे आये हैं और बिना खाये चले गए तो जाने कब तक भूखे रहना पड़े सो तुम से जल्दी खाना बनाने को कह दिया और तुम्हें तो अपनी लाड़ली से जैसे फुरसत ही नहीं मिलती। अरे खाना जल्दी बना लो तो फिर बैठ कर खूब प्यार करना। कोई रोकता थोड़े ही।

लल्ली बड़ी अम्मा को बहुत डरती है। जो उनको देखा तो मां की गोद से अलग हट दूर खड़ी हो गई। अपराधिनी सी।

रमा ने अँगूठे का खून धोती के कोर से पोंछ लिया और फिर आलू छीलने लगी। अपनी विवशता पर उसे व्यथा हुई। अभी चार बजे तो आये हैं; तब उससे कहा गया कि खाना जल्दी बनेगा। मेहरिन सात बजे आती है। बेचारी ने स्वयं ही बर्तन साफ किए और अब तरकारी काटने बैठ गई है। कोई मशीन तो है नहीं कि कहते ही काम हो जाय और फिर मशीन को भी तो कुछ समय चाहिए ही। पर इसमें उसका दोष ही क्या? यह तो उसी के भाग्य का दोष है। विधाता ने उसे इतना विवश बना दिया है तो दुःख भोगना ही पड़ेगा. रमा को अपने अच्छे दिनों की याद कर रुलाई आ गई पर

वह रोये किसके सामने। एक समय था कि उसके पति शहर की मिल के बड़े बाबू थे। सौ रुपये महीने मिलते थे मालिक उसके काम से कितना प्रसन्न थे, तब घर में वह रानी की तरह रहती थी, लल्ली के तनिक से आग्रह को घर भर पूरा करने के लिए बेचैन हो जाते थे ऐसा जान पड़ता था कि लल्ली ही घर भर की आँखों की पुतली है और एक समय आज है कि वह अपनी माँ का भी प्यार पाने की अधिकारिणी नहीं समझी जाती।

आँसू उसने पोंछ लिए। उसके पति कितने अच्छे थे, लल्ली को कितना प्यार करते थे और उन्हीं के कारण तो बड़े भाई को भी नौकरी मिली थी; आज तक मिल से उसके नाम दस रुपये हर महीने आ जाते हैं। उसके और उसकी लल्ली के लिए इतना ही बहुत है फिर भी घर में नौकरानी से अधिक कुछ नहीं है। घर भर उसे सदैव ही परेशान किया करते हैं। सास और जेठानी चौबीस घन्टे उस पर अपना क्रोध उतारा करती हैं। इस घर में वह रह रही है तो केवल अपने ससुर के सहारे। कभी-कभी सबकी दृष्टि बचा कर ये रमा से दो स्नेह भरी सान्त्वना की बात कह देते हैं तो उसका सारा दुःख दूर हो जाता है।

कुम्मी के पिता खाना खा कर चले गए तो रमा रसोई में बैठी रही। खाना सब लोग जब तक न खा लेंगे तब तक उसे प्रतीक्षा करनी होगी। बड़ी देर हो रही थी; उठ कर वह खिड़की पर आ खड़ी हुई? खिड़की से गली में आते जाते लोग दिखाई पड़ते हैं। वह गली के किनारे एक चाट वाला बैठता है। रमा देखती रही, दो लड़के बैठे चाट खा रहे हैं। मलाई बरफ़ वाला आवाज़ लगाता हुआ गली से निकल गया। रमा यह सब खिड़की से खड़ी देख रही थी।

अरविंद गली से जा रहा था तो भाभी को खिड़की पर खड़े देख रुक गया। नमस्कार कर बातें करने लगा। रमा अरविन्द को बहुत दिनों से जानती हैं। असान्धवी उसकी बचपन की सखी है। दो का ब्याह साथ-साथ ही और एक ही मुहल्ले में हुआ था। रमा को बड़ा शौक था कि कोई उसे भाभी कहे पर उसके कोई देवर

तो था नहीं सो असान्धवी का यह छोटा देवर उस समय दस ग्यारह वर्ष का था। यह जब उसे भाभी कह देता तो उसका हृदय जैसे स्नेह से भर उठता। वह अरबिन्द को बहुत चाहती थी इसलिए स्कूल के आने के बाद अरबिन्द का अधिक समय अपनी भाभी के पास ही बीतता था। किन्तु आज यह अरबिन्द अठारह उन्नीस वर्ष का युवक हैं; यूनीवर्सिटी का विद्यार्थी है फिर भी भाभी के प्रति उसका उसी प्रकार स्नेह है। कभी कभी वह भाभी से सुख दुःख की दो बातें पूँछ लेता है।

रमा खिड़की पर खड़ी अरविंद से बातें कर रही थी कि बड़ी बहू रसोई के द्वार पर आ खड़ी हुई। ओह! तो ये लक्षण है, तभी तो यह मिजाज़ है। जरा सी हया शरम नहीं। खिड़की से खड़े हो यह दीदे लड़ रहे हैं।

आहट पा जो रमा ने मुँह फेरा तो जिठानी को खड़े देख सहम गई। अरविंद जा चुका था। जिठानी उसी पैर लौट गई। क्षण भर में रमा के कुकर्म की कहानी से घर में तूफान बरपा हो गया। आये दिन रोज़ ही ऐसी बातें होती हैं। रमा का हृदय यह सब सुनते-सुनते पक गया है। आज जब उस पर कलंक लगाया गया तो वह सहन न कर सकी। नारी सब कुछ सह सकती है पर अपने ऊपर कलंक वह नहीं सह सकती। जब अधिक न सहा गया तो जेठानी से बोली—जी जी भगवान का भी भय करो? अरे अरबिन्द था। उसे मैं आज से ही थोड़े ही जानती हूँ।

'हाँ अरबिन्द ही था वह तो तेरा बेटा ही है न?

उस दिन जिठानी ने कह दिया कि वह इस कलंकनी के हाथ का बना खाना नहीं खा सकती। सास तो पूजा पाठ करती है वे भला कैसे खा सकती थी। ससुर आये और खाकर चले गए। घर उन्हें कुछ आज अजीब सा लगा तो उन्होंने छोटी बहू से पूँछा—बहू आज यह सब सुनसान क्यों हैं; सास तुम्हारी कहां गई?

रमा रो पड़ी। बूढ़े ने जो सान्त्वना दी तो उसने रो-रो सब

बातें बता दीं। बूढ़ा कुछ देर सुनता रहा सोचता रहा फिर बोला—बहू इसमें रोने की बात नहीं है बहुत दिनों से मैं सब देख रहा हूँ विचार कर रहा हूँ पर कर क्या सकता हूँ। अब अपने में शक्ति नहीं दूसरों के ही सहारे पर खाता हूँ इसलिए सब न्याय अन्याय घूंट जाता हूँ।

बात रमा को जैसे तीर सी लगी। दूसरे के आसरे पर होना ही तो यह सब करा रहा है। विवशता है वे आखीर को तो क्या जिसकी कमाई खाते हैं उसके विरुद्ध बोले क्या?

पर रमा अब किसी के सहारे नहीं रह सकती। रसोई से उठ वह अपने कमरे में आई; लल्ली सो रही थी उसने उसे एक बार चूम लिया। दृढ़ निश्चय से उसकी आखें चमक उठीं। दूसरे के सहारे वह नहीं रहेगी। कागज उठा उसने अपने पति के मालिक के नाम पत्र लिखा। आठवें तक उसने शिक्षा पाई है। वह व्यर्थ में दस रुपया नहीं ले सकती उसे कोई काम दे दे। किसी स्कूल में नौकर करा दें।

दूसरे दिन पत्र उसने लल्ली के हाथ अरबिन्द के पास भेज दिया कि इसे मिल के मालिक के पास पहुँचा देना और स्वयं कमरा बन्द किये पड़ी रही।

मिल के मालिक का एक स्कूल चलता है, पत्र उन्होंने पाया तो तुरन्त ही लिख दिया—कल से तुम स्कूल में अध्यापिका नियुक्त हो गई। वेतन ३०) महीने मिलेगा।

दिन में चपरासी पत्र लेकर आया तो लल्ली से तुरन्त भेज रमा ने पत्र मंगा लिया! पत्र पढ़ा तो प्रसन्नता से उसकी आंखे खिल गईं।

घर के लोगों ने सुना तो बहुत नाक भौं सिकोड़ी। कुम्मी के पिता ने तो बड़ा विरोध किया। जेठानी कहती थी कि यह सब आजादी पाने के बहाने हैं। कुल में कलंक लगे बिना न रहेगा। पर बूढ़ा कहता था वह सब मैंने किया है। मैं स्वयं मिल के मालिक के

पास गया था कि उसे कोई नौकरी दे दो। आखिर वह तुम्हारे ऊपर भार बन कर रहे क्यों ?

रमा ने स्कूल में रह कर हाईस्कूल पास कर लिया है। बी० टी० सी० भी उसे मिल गया। अब वह स्कूल की सहकारी प्रधान अध्यापिका है। सत्तर रुपये वेतन मिलते हैं। घर में सब उसका आदर करते हैं। लल्ली सबकी आँखों की पुतली है। खाना जिठानी जो बनाती है पर इसकी उन्हें कभी शिकायत नहीं।

पीपल
का
अट्टहास

किसी समय यह खंडहर भी अपने ऐश्वर्य के मद में झूमता रहा होगा, इसके आंगन में नूपुरों की रुन-झुन, सजे हुये कमरों में से संगीत की मधुर स्वर लहरी कभी गूंजती रही होगी। इसकी टूटी हुई दीवारें, इसके छिन्न-भिन्न फर्श, जिन पर आज घास उग आई हैं, आज भी इसके विगत ऐश्वर्य की कहानी कहते हैं। आंगन की घास से अठखेलियाँ करती हुई आज भी जब समीरण बहने लगती है, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई नवयौवना अपने प्रेमी से अपना हाथ छुड़ा कर भाग रही हो और उसके सुगंधित वस्त्र हवा में लहरा कर वह ध्वनि उत्पन्न कर रहे हों। आज कोई नहीं, जो इस खंडहर के विगत ऐश्वर्य की कहानी कह सके, पर निकट ही खड़ा हुआ पीपल का वृक्ष कितना पुराना है। शायद इस खंडहर की पहली ईंट के

साथ ही इस पीपल की जड़ को इस भूमि में आश्रय मिला था। उसने खंडहर के शैशव और यौवन का काल देखा है। और अब देख रहा है उसका विनाश।

मर्मर करके पीपल का यह पुराना वृक्ष कभी-कभी रो उठता है तो उसके पीले पत्ते खंडहर की दीवारों पर गिर कर अर्घ्यदान करने लगते हैं। सोचता है जब यह खंडहर भी विलीन हो जायगा तब भी तो उसे इसी प्रकार खड़े रहना होगा। लेकिन उस समय कौन यह बिश्वास कर सकेगा कि उसकी इस बूढ़ी आंखों ने कभी उन दीवारों के भीतर कितने ही रोमांस उठते और बढ़ते देखे हैं।

देखे होंगे, पर आज तो उसे अपने वक्षस्थल पर होने वाले रोमांस से ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है। बसंत के आगमन में जब उसमें नये पात आ गये, तो उसने देखा कि उस मादा चमगादड़ का रूप ही बदल गया है। मुग्धा की भांति वह जैसे कुछ भूलीभटकी सी रहने लगी है। और वह छोटा चिक! उसे वह मादा चमगादड़ भर पेट खाना भी तो नहीं देती थी। पीपल ने सोचा था शायद ही यह चिक कभी अपने पर फैला कर उड़ सके।

उस दिन मां चिक को अपने पंजे में दबा कर आसमान में उड़ गई। चिक को एक नया अनुभव हो रहा था। जी में आया कि वह मां से हट कर दूर उड़े, उड़ता ही रहे किन्तु कर न सका वह कुछ। लौट कर जब मां ने उसे पीपल की डाल पर बिठा दिया तो उसने अपने पङ्ख फड़फड़ाये किन्तु दूसरे ही क्षण पञ्जों के बल उल्टा लटक गया। हँस कर मां ने कहा—इतना घबड़ाते क्यों हो एक दिन तुम भी उड़ सकोगे?

चिक को अपनी कमजोरी पर खीझ सी लगी पर मां की बात उसे व्यङ्ग प्रतीत हुई; किन्तु वह कहता ही क्या? आस्मान की लाली चमक उठी तो उसने आखें बन्द कर लीं।

और वह दिन आया भी। तीन चार दिन बाद एक दिन मां चिक को लेकर बहुत ऊपर उड़ गई। सहसा चिक को जान पड़ा जैसे मां थक गई हो; उसके पञ्जे शिथिल पड़ गए और दूसरे क्षण! अरे-रे,........

चिक नीचे गिर रहा था। भय के मारे उसका सारा शरीर कांप रहा था। उसे जान पड़ा जैसे पृथ्वी पर गिर कर उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग छितरा उठेंगे। तभी सहसा उसके पङ्ख खुल उठे। अरे, उसे अभी तक ज्ञात भी न था कि उसके भी पङ्ख हैं।

और फिर फड़-फड़ फड़! वह नीचे गिरता जा रहा था किन्तु अपने पङ्खों के बल सम्भलता हुआ। साहस और शक्ति आ गई। और वह हवा में तैरने लगा।

उस दिन जैसे उसे भूख ही न लगती हो रात भर वह आस्मान में उड़ता रहा। जब सुबह हो रही थी तब उसने देखा कि उसकी मां उसके पास से उड़ी चली जा रही है वह भी पीछे हो लिया।

पीपल की डाल से दोनों लटक गए तो मां ने मुसकरा कर पूछा—क्यों चिक आज का दिन तुम्हें कैसा लगा!

मां रात को दिन समझती थी।

चिक ने उत्तर दिया—जी में आता था कि उड़ता ही रहूं पर तुम्हें देख कर साथ हो लिया।

'अरे तूने कुछ खाया आज?'

तब चिक को ध्यान आया कि आज उसने कोई शिकार नहीं किया। पर मां से कहता क्या! मां को जैसे सब कुछ ज्ञात हो उसने अपने मुख से निकाल कर कुछ चिक के मुंह में डाल दिया।

दिन बीत चले तो चिक को लगने लगा कि वह अपनी मां से बहुत दूर रहे। मां भी अब उसकी कोई चिन्ता न करती थी। उसे अपना ही ध्यान न था।

बसन्त की उन्मत्त समीरण ने उस दिन चिक के हृदय में एक नया जीवन फूंक दिया। बहुत दिनों से उसने अपने शरीर की ओर ध्यान न दिया था। आज उसने अपने कोमल पङ्खों को जीभ से चाट कर साफ किया। रेशम की भांति उसकी रोमावलि चमक उठी।

वह आस्मान में उड़ चला। अरे! आज तो उसे दुनिया कुछ नई सी दीख पड़ी। जाने कहां से नये-नये ये चमगादड़ आ गये थे पहले उसने उन्हें कभी अपने आस्मान में उड़ते न देखा था।

तभी उसे वह दिखाई पड़ी। जितने उड़ रहे थे उनमें चिक को

वही सबसे सुन्दर लगी। मदमत्त सी वह धीरे-धीरे आस्मान में उड़ रही थी। चिक के जी में आया कि वह जा कर उससे बातें करे किन्तु करे कैसे कभी की जान-पहचान तो है नहीं।

हरे रङ्ग का एक कीड़ा उड़ता दिखाई पड़ा तो चिक उसके पीछे हो लिया। अपनी प्राण रक्षा के लिये कीड़ा एक ओर उड़ चला। चिक ने देखा और उसी ओर उड़ चला। चिक ने देखा अरे उसी ओर तो वह उड़ रहा था। चिक की आंखों से कीड़ा ओझल हो गया, किन्तु वह उसी ओर उड़ता गया।

चक! उसने सुना, देखा तो वह उसके उस शिकार को चट कर गई थी। चिक उसके निकट उड़ता हुआ बोला—तुमने मेरा शिकार पकड़ कर चट कर लिया।

'पर तुम तो उसे पकड़ न सके थे।'

'हां, लेकिन मैं पीछा तो कर रहा था।'

वह हँस पड़ी तो चिक जैसे सब कुछ भूल गया। कितनी सुन्दर वह जान पड़ी। उड़ते हुये वह उसे निर्निमेष देखता रहा। फिर बोला—मैंने तुम्हें पहले यहां कभी नहीं देखा था!

'हां, मैं अभी दो-तीन दिन ही तो हुए दक्षिण से आई हूँ।'

'रहती कहां हो।'

'अभी कोई स्थान ठीक नहीं किया!'

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'तत्।'

क्षण भर चिक कुछ सोचता रहा, फिर बोला—तुम्हारे साथ और कौन है?

कोई नहीं। तत् ने उत्तर दिया।

तो चिक ने कहा—तुम चलो मेरे साथ रहो। बड़ा अच्छा स्थान है। मेरी मां, भाई-बहिन...'

चिक और कुछ कहता किन्तु तत्—'मैं' तेरे साथ नहीं 'जाती' कह कर तेजी से एक ओर उड़ चली।

इस अपमान के बाद चिक की इच्छा तो हुई कि वह उसका साथ

छोड़ दे, पर छोड़ न सका। पीछे-पीछे वह उड़ने लगा किन्तु चिक को आज पता चला की उससे भी तेज कोई उड़ सकता है।

तत् बड़ी तेजी से उड़ी जा रही थी। कभी कभी वह मुड़ कर चिक को देख लेती। सारी रात चिक ने तत का पीछा किया, किन्तु उसे पकड़ न सका।

तारों का प्रकाश कुछ धुँधला हो चला तो चिक ने अनुभव किया जैसे तत थक गई हो। उसकी गति धीमी पड़ गई। चिक उसके पास पहुँचा। उसके फैले दाहिने पङ्ख पर चिक ने अपना पङ्ख रख दिया तो उसके शरीर में एक बिजली सी फैल गई। कितना अच्छा लगता था दोनों उसी प्रकार उड़ते हुये नीचे की ओर चले कोई कुछ बोला न।

नदी के किनारे सुनसान में उस सूखे पेड़ की डाल पर आ कर तब बैठ गई। चिक भी निकट बैठ कर तत के पंखों को चाट कर चमकाने लगा। थकान कुछ कम हुई तो तत् ने कहा—हम तो पानी पियेंगे।

दोनों साथ उड़े और नदी के ऊपर उड़ते हुये जी भर कर पानी पिया, फिर आ कर उसी पेड़ पर बैठ गये, तो चिक ने उसकी गरदन पर अपनी गर्दन रखते हुए कहा—अब रात हो रही है हमें अपने सोने की जगह ठीक करना चाहिये।

तत् को जैसे इसका ध्यान ही न था, उसने अपनी चोंच से चिक का पङ्ख खींचते हुए उत्तर दिया—तुमने इतना भी प्रबन्ध नहीं कर रखा!

उसकी आंखों में कुछ झलक रहा था चिक जैसे पागल हो उठा हो 'सब ठीक है रानी चलो।' उसने कहा और धीरे से अपनी रानी को उठा कर उड़ चला।

दोनों साथ-साथ उड़ कर खण्डहर के पास पीपल पर पहुँचे, तो तत् ने कहा—मैं यहां न रहूँगी, यहां तो न जाने कितने रहते हैं। मैं यहां नई हूँ मुझे देख कर सब मेरी हँसी उड़ायेंगे।

क्षण भर चिक सोचता रहा, फिर उसे लेकर वह उस खण्डहर

के भीतर चला गया। दोनों ने अपने योग्य स्थान चुन लिया और बैठ गये।

खण्डहर की मरती हुई आत्मा चीख उठी। ओह! उसे याद है इन्हीं दीवालों के बीच जब पहले-पहल वह ब्याह कर आई थी उसकी सुहागरात के लिये कितना खर्च करके इस कमरे को सजाया गया था। और आज वहीं चिक की सुहागरात है।

प्रातः समीरण में पीपल अट्टहास कर उठा। भर-भर करके कुछ प्रौढ़ पत्ते, जिन्होंने कुछ देखा था, झड़ पड़े।

प

ग

डं

डी

युगों का पुराना है। किसी समय इसमें पानी रहा होगा पर आज तो इसका अन्तस्तल सूख गया है। जाने कितनी मिट्टी दूर-दूर से आकर इसमें भर गई है। ईंट गल कर गिर गई है। जाने कितने छेद बन गए हैं। एक नीम और बरगद के पेड़ उग आये हैं गई हुई ईंटों को फोड़ कर।

आस पास निर्जन है। मीलों तक किसी गाँव का पता नहीं है। जङ्गल सा है। चारों ओर पेड़-पेड़-पेड़! कहीं खेत भी नहीं दिखाई पड़ता। शायद किसी धर्मात्मा व्यक्ति ने यह कुआँ राहियों की तृष्णा बुझाने को बनवाया था। किन्तु राही जिसका चलते रहना ही काम है उसकी तृष्णा को भला कोई बुझा सका। इस कुएँ ने भी जैसे अपने जीवन की निस्सारता को समझ लिया और गिर कर नष्ट हो गया है।

लेकिन कुएँ के निकट से जो यह पगदंडी जाती है इसमें कोई अन्तर नहीं इस पर कभी घास भी उग कर जीवित नहीं रहने पाती। आज भी उजड़ा कुआँ अपने पास जाते हुए राहियों को एक हसरत भरी निगाह से देखता है पर किसी राही ने अब तक उसके इस नाश पर दो बूँद आँसू भी नहीं गिराया। देखते भी नहीं वे उसकी ओर।

किन्तु उसे संतोष है कि वह अब भी किसी के कुछ तो काम आता है। कबूतरों के एक जोड़े को जैसे कुयें की इस स्थिति पर दया आई और उन्होंने आकर कुएँ के एक खोंडर में अपना घर बनाना शुरू कर दिया।

दोनों युवा थे। नर का नाम था गुत और मादा का रूँ गृह निर्माण का उन्हें कभी अनुभव भी न था। ऐसे ही उस दिन गुत अकेला जङ्गल के एक कोने जमीन पर गिरा दाना चुंग कर खा रहा था तभी न जाने कहाँ से रूँ भी आ गई और दाना चुंग-चुंग कर खाने लगी।

गुत ने क्रोध से भर कर रूँ की ओर देखा रूँ मजे में दाना चुंग रही थी जैसे उसे इस सब की परवाह ही न हो। गुत क्षण भर देखता रहा कि उसका क्रोध जाता रहा। सोचा—यह भी कोई जीवन है कि अकेले ही चुंगते फिरा जाय।

पर कौन उसके साथ सदा रहे।

तभी रूँ ने अपनी सुन्दर गर्दन उठा कर गुत को देखा तो देखती रह गई। कितनी सुडौल शरीर, कितनी मतवाली अखें और गर्व के साथ खड़े होने का यह ढंग! बोली—यहाँ बहुत दाने हैं मेरे चुंगने से तुम्हारी कोई हानि तो न होगी।

गुत उसकी गोल लाल आँखों की शराब पी रहा था। रूँ की बात सुन जैसे जग उठा बोला—नहीं नहीं मैं तो सोच रहा था कि तुम सदैव मेरे ही साथ रहो।

और रूँ के पास आ गया। रूँ उसकी मतवाली चाल को देख रही थी। जब वह पास आकर खड़ा हो गया तो रूँ ने आँखों में आत्म समर्पण भर गुत की ओर देखा। उसकी आँखें मुँदी जा रही थीं।

गुत जैसे नशे में। शरीर में एक कम्पन हो रहा था, पैर लड़खड़ा रहे थे। उसने अपनी चोंच रूँ के सिर पर रख दी। शिथिल सा जैसे कुछ रूँ के सिर पर लुढ़क गया हो।

रूँ को एक अजीब सा अनुभव हो रहा था, नसों का रक्त हृदय में दौड़ने लगा था। जब वह छोटी थी पंख उसके भली प्रकार नहीं उगे थे तब वह अपने माता पिता के घोंसले में भाई बहिनों के साथ रहती थी। दिन में जब माँ बाप भोजन की खोज में उड़ जाते तो वे सब एक दूसरे से चिपट कर आखें मूँद लेते किन्तु कभी रूं को इतना सुख न मिला था जितना आज उसे गुत के इस स्पर्श से हो रहा था।

रूँ ने अपनी चोंच गुत के मुँह में डाल दी और दोनों एक दूसरे को अधखुली आँखों से देखते रहे। थोड़ी देर बाद रूँ ने अपनी चोंच निकाल पृथ्वी पर पड़े हुए एक दाने को उठा गुत के मुँह में डाल दिया पर गुत को जैसे इसका पता नहीं। आंखें बन्द किये बेसुध सा वह खड़ा रहा। रूँ बोली—तुम खाते क्यों नहीं ?

गुत ने अनेक कपोत कपातियों की बोली सुनी है। पर इतनी मधुर तो किसी की नहीं थी। कैसे वह कहे कि अब उसकी भूख कुछ दूसरे ही प्रकार की है।

गुत ने दाने को फिर रूँ के मुँह में डाल दी तो विह्वल हो उठी। दाने को निगलते हुए उसने कहा—तुम बड़े अच्छे हो।

गुत उसके चारों ओर चक्कर काट रहा था। कैसे वह कहे रूँ भी उसे बहुत अच्छी लगी है उसकी आवाज़ तो बन्द सी होगई है। गूँगा तो न हो जायगा वह !

तभी रूँ ने फिर कहा—अब मैं तुम्हारे ही साथ रहा करूँगी।

इतनी जल्दी गुत का स्वप्न पूरा हो जायगा यह वह सोच भी न सका था।

तभी जैसे उसे ध्यान आया रूँ को वह रखेगा कहां। अभी तो वह स्वयं किसी पेड़ की डाल पर रह कर रात काट लेता है किन्तु रूँ तो बड़ी कोमल है उसके लिए एक अच्छा स्थान चाहिए।

गुत को सोचते देख रूँ ने पूंछा—क्या सोच रहे हो।

गुत यथार्थ वादी संसार में उतर आया था सो उसकी वाणी खुल गई बोला—सोचता हूँ तुम्हें कहां रखूँगा। मेरे तो कोई घोंसला ही नहीं है।

रूँ ने गुत की गरदन को दुलराते हुए कहा—तो हम अपना घोंसला शाम होने से पहले बना लेंगे।

दोनों के हृदय में आया कहां। तभी दोनों उड़े। खोजने के बाद उन्हें यह कुआं मिला गुत ने एक स्थान चुन लिया तो बोला—यह स्थान बहुत ठीक है। रात में यहाँ सोने में बड़ा आनन्द आयेगा।

तभी लज्जा कर रूँ ने कहा—और यहां दिन में धूप जो आयेगी।

'तो इसे दिन में रहना ही कहाँ है। दिन में तो हम चुँगते फिरेंगे।' गुत ने उत्तर दिया।

पर रूँ को माँ जो होना है बोली—और बच्चे?

गुत ने तो यह सोचा भी नहीं था। तो बच्चे भी होंगे। उसे अपने माँ और पिता का स्मरण हो आया।

तभी रूँ ने नीम और बरगद के पेड़ की आड़ में एक कोटर चुना और बैठ गई उसमें बोली—तुम जाओ बाहर से लकड़ियां बिन लाओ मैं यहां हूँ।

तो गुत असमंजस में पड़ गया। कैसी लकड़ियां वह बिन लावे। तभी रूँ उड़ कर बाहर आई। गुत उसके साथ था। दोनों सूखी टहनियाँ लेकर कुएँ के अन्दर गए। संध्या के पहले उनका घोंसला तैयार हो गया।

यही था उनके दाम्पत्य जीवन का प्रारम्भ। गुत ने रूँ के साथ नये जीवन का अनुभव किया। दोनों एक साथ दिन भर उड़ते फिरते और शाम को आकर अपने घोंसले में सो रहते।

एक दिन दोनों जङ्गल में दाने की खोज में उड़ रहे थे कि रूँ ने गुत से कहा वह अपने घोंसले को लौट रही है। यह कह कर वह

अपने घोंसले की ओर तेजी से उड़ी। गुत को आश्चर्य था शाम के पूर्व घर पहुँचने की आखिर जरूरत क्या ?

रूँ के पीछे-पीछे वह भी घर पहुँचा। देखा तो रूं का मुख विवर्ण हो उठा है। जैसे किसी असह्य पीड़ा से वह तड़प रही हो। कुछ समझ में न आया गुत के! क्या करे वह रूँ के कष्ट का निवारण करने के लिये। उसकी आंखों में आंसू आये। उसने आंखें बन्द कर ली।

आखें खुली तो उसने देखा रूँ मां बन गई है। सोचा उसने मां बनने में कितना कष्ट सहना पड़ता है।

गुत कैसे रूँ पर ही अंडों के पालन का भार छोड़ देता वह भी रू की सहायता करने लगा। जब वह अंडों पर बैठ जाता तो रूँ अपने भोजन की खोज में बाहर उड़ जाती। थोड़े दिन बाद अंडे फूट गए और दो छोटे बच्चे निकल आये। गुत ने आज अनुभव किया कि वह पिता हो गया है।

अब रूँ और गुत दोनों बच्चों को छोड़कर भोजन की खोज में उड़ जाते। अपने अतिरिक्त अब उन्हें बच्चों की भी जो चिन्ता थी।

एक दिन गुत एक पेड़ पर बैठा था। रूँ थोड़ी दूर पर दाना चुंग रही थी। तभी सहसा एक बाज ने गुत को पकड़ लिया। एक चीख! रूँ ने सुना उड़ कर आई तो दूर से ही देखा गुत जमीन पर पड़ा है। गरदन से उसके रक्त बह रहा है और एक बाज निकट ही बैठा गुत के माँस को खा रहा है।

अर्धमृत सी रूँ पेड़ पर बैठी रोती रही। अपने गुत का यह अंत उससे देखा न जा रहा था। बाज अपनी क्षुधा पूर्ति के बाद जब उड़ गया तो रूँ गुत के अवशिष्ट शरीर के पास आकर बैठ गई। उसकी आखों से अविरल अश्रु धार बह रही थी।

थोड़ी देर ही बीती थी कि गुँग आकर रूँ के पास बैठ गया। रूं गुंग को पहले से जानती है। वह अकेला है कोई कपोती उसे नहीं मिल सकी। रूँ से उसने कई बार अपना प्रेम प्रदर्शन किया किन्तु रूं ने उसे ठुकरा दिया।

आज रू ने गुंग को देखा तो उसकी वेदना उभर उठी। गुंग उसके निकट आ गया तो रू को कुछ सान्त्वना मिली।

और जब रू गुंग के साथ अपने बच्चों के पास पहुँचने के लिए उड़ी तो जैसे वह गुत को भूल गई हो। गुत का शव अपनी पराजय पर जैसे हंस पड़ा।

उस दिन रू के बच्चों ने एक नया पिता पाया।

और दूसरे दिन प्रात: जब रू कुएँ से बाहर निकली तो कुएं के निकट से जाती हुई पगदंडी को देख हंस पड़ी सोचा--मैं भी एक पगदंडी हूँ जिस पर राही यात्रा करते हैं। किसी राही के चले जाने का पगदंडी को क्या शोक!!

स्वप्न
का
मोल

यौवन के बसन्त का अभी शैशव काल था। वह बैठे-बैठे न जाने कितनी कल्पनायें करती। निशा के नीरव प्रहरों में जब वह सोने लगती तो सुन्दर स्वप्नों की एक वाटिका उसके सन्मुख अपने मोहक फूलों को लेकर आ जाती। उसे फूलों से बहुत प्रेम था। वह अपना शृङ्गार गुलाब के कोमल तथा सुगन्धित पुष्पों से करती। इसमें उसको असीम सुख का अनुभव होता। एक दिन उसने सपना देखा मानों वह फूलों से इस प्रकार लदी हुई है जैसे कोई लतर। वह स्वप्न में ही मुस्कराई।

प्रातःकाल वह उठी और अपनी वाटिका से पुष्प चयन किया और उन्हीं से अपना शृङ्गार किया। दर्पण के सम्मुख जा कर उसने अपना मुख देखा, ओह वह कितनी सुन्दर प्रतीत होती थी। वह अपने कमरे में टहलती हुई अपने सौन्दर्य्य पर विचार करने लगी। थोड़ी देर बाद उसने देखा कि उसके हाथों में सजे हुये पुष्प सूखने लगे। वह

झुंझलाई उसने शीशे में जाकर अपने को देखा। सब फूल मुरझा चुके थे।

उसने एक-एक करके सब फूलों को नोचना आरम्भ किया। किसी ने इतने में ही पुकारा—'फूल लोगी' वह उठी खिड़की से झांका सुन्दर फूल की एक डलिया लिये एक स्त्री बाहर खड़ी थी। उसने उसे बुलाया। सब फूल कागज के बने थे। इत्र के कारण उनमें सुगन्ध थी। उसने कहा—कितने सुन्दर फूल हैं, ये कभी नहीं मुरझाते, इन फूलों से तो ये फूल कहीं अच्छे हैं, उसने गुलाब के फूलों को फेंकते हुए कहा।

'अच्छा तो आओ हम तुम बदल लें, फूल वाली ने कहा।

'तुम इन सुन्दर फूलों की अपेक्षा इन फूलों को क्या करोगी ये तो केवल कुछ क्षण को ही जीवन रखते हैं। ये मेरे मधुर स्वप्नों की भाँति हैं जो पल भर में नष्ट हो जाते हैं। इनका भी कोई अस्तित्व ? बालिका ने कहा।

'तुम क्या समझोगी, फूलवाली ने कहा।

दोनों ने फूल बदल लिये। फूलवाली मुरझाये हुये फूलों को लेकर चली गई।

बारह वर्ष पश्चात्—

एक दिन एक प्रौढ़ा खिड़की से बाहर की ओर झांक रही थी। किसी ने नीचे से कहा—'फूल लोगी।' प्रौढ़ा ने देखा एक वृद्धा फूल बेंच रही है उसने पहचाना और कहा नहीं अब मेरे पास वे फूल नहीं हैं। ओह! वे क्षण भर रहने वाले स्वप्न के समान मेरे फूल कितने सुन्दर थे।'

वृद्धा हँसी और बोली—मैंने तो तुम्हें पहले ही कह चुकी थी।

'मुझे अब ज्ञात हुआ वे सुन्दर फूल और सुखद स्वप्न ही मेरे हृदय को सुख देते थे जब से मैंने तुमसे फूल बदले तब से मैंने न तो वे सुन्दर फूल का सा सुख ही इन फूलों से पाया और न वैसे मधुर स्वप्न ही देखे। आह! कितना सुखमय जीवन था जिसमें चिन्ताओं का अस्तित्व ही न था। प्रौढ़ा ने दुःख से कहा।

अच्छा, तो अब तुम्हें अपनी भूल ज्ञात हुई। तो अब भी यदि तुम लेना चाहो तो तुम्हारे दिये हुये सूखे फूल हैं इन्हें मैं तुम्हें दे सकती हूँ। 'वृद्धा ने मुस्कराते हुये कहा।'

'ओह! मैं उन सूखे फूलों को पाने के लिये अपना सर्वस्व निछावर कर सकती हूँ। ताजे फूल तो मैं रख भी नहीं सकती।' प्रौढ़ा ने कहा।

फूलवाली ने अपनी डलियों से एक सूखे फूलों का बण्डल निकाला और दे दिया प्रौढ़ा ने उसे अपने वक्षस्थल में छिपा लिया।

हे र फे र

पारिजात के सुपुष्पित तथा मनोहर उद्यान में एक षोड़षी एक सुन्दरी तथा इष्ट-पुष्ट राजकुमार के साथ टहल रही थी !

'मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ 'संसार से अपरिचितता ने कहा ।

'और मैं तुम्हें' आवेश से उन्मत्त राजकुमार ने कहा—

राजकुमार के स्पन्दित अधरों ने कुमारी के तृषित अधरों की लाली पर लोटकर अपनी सारी करुणा बिखरा दी ।

उषा की स्वर्णीय किरणें सुमनों के साथ क्रीड़ा कर रही थी। उन्होंने सब देखा और फूलों को गुदगुदाया पाटलपुष्पों के अधरों पर एक हल्की मुस्कान नाच उठी । निष्कर के हृदय में एक हूक उठी उसका हृदय भभर करके विदीर्ण हो उठा और वह चला उसकी करुण का प्रवाह ! पक्षिशावकों ने विहाग की तान से वायुमण्डल भर दिया। दक्षिण समीरण मुस्कराया। मन्द सुगन्द बाटिका में बहने लगी। इस मनोहर संसार के निवासियों का कहना है कि यहां मृत्यु आती ही नहीं ।

'क्या तुम मुझे सदैव इसी प्रकार प्रेम करोगे ? मुग्धा ने कहा—

'प्रलय के पश्चात् भी' राजकुमार ने कहा—'कितनी सुन्दर तुम्हारी यह केशराशि है।' राजकुमार ने अपनी उङ्गलियों से उसकी केशराशि सुलझाते हुये कहा—

'और मेरी आंखें' प्रेमोत्कारिणी ने कहा उसकी वाणी में राग था।

'तुम्हारी आंखें सुखमा की सुखद सागर' राजकुमार ने पागल की तरह कहा—'और तुम्हारा कोमल परच की कलियों से विरचित है और तुम्हारा मुख—राजकुमार रुक गया।

'हां, और मेरा मुख ?' उत्कंठिता ने कहा—

'गुलाब के सबसे सर पुष्प की अरुणिमा से' यह कह कर उसने उन अधरों को अपने अधरों से अच्छादित कर लिया।

दक्षिणी समीरण एक पीत-तरु-पत्र को पतन की ओर, नाशकी ओर ढकेलता हुआ बहकर उसे राजकुमार के वक्ष पर गिरा दिया।

'यह क्या ? यह सूखा पत्ता कैसे आ गया ? यह विनाश की ओर अग्रसर होता हुआ मुरझाया हुआ पत्र कैसा ?' राजकुमारी ने अलसाये हुये नयनों से पूंछा—

राजकुमार ने उसे एक ओर फेंका।

'उस अंतिम संसार से आया है जहां प्रत्येक वस्तु का नाश निर्धारित है जहां कोई सदैव नहीं रह सकता। जहां प्रेम की पुनीति भावना भी अनित्य है।

राजकुमारी ने एक आह भरी।

एक दूसरा पत्ता वायु के वेग से उड़कर राजकुमारी के स्कन्ध पर बैठ गया। राजकुमार ने उसे उठा लिया और अपनी प्रेयसी को दिखाकर कहा—वह अनित्य संसार तुम्हें बुलाता है।

न, वहां मेरा प्रेम भी मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। राजकुमारी ने विचलित होकर कहा—

पगली ! पत्तों से इतना भय ? राजकुमार ने कहा—

'उंह ! तुम मुझे प्रेम करते हो न,' रामकुमारी ने कहा—

'हृदय से' राजकुमार ने कहा—

दो अधर एक दूसरे से मिल गये !

हेर-फेर

'नारी-मण्डल' के भवन में एक वृद्धा, मरणासन्न पड़ी थी। उसके जर्जर शरीर में रूप का आकर्षण नहीं था उसकी सुन्दर दर्शन पंक्ति नहीं थी। उसकी केशराशि को चन्द्रमा की धवल किरणों ने धोकर सफ़ेद कर दिया था। उसके शरीर में अस्थिपंजर ही शेष था।

आज सन्ध्या से अधिक बचने की आशा नहीं, डाक्टर ने उसके निकट खड़े होकर कहा—

यह न जाने क्या-क्या बकती रहती है, न जाने किन-किन सुन्दर देशों की बातें करती है एक नर्स ने कहा —

सम्भवतः उसने अपने जीवन में कहीं की यात्रा की थी। डाक्टर ने कहा और आगे बढ़ गया।

थोड़ी देर बाद। बिछौना खाली था। वृद्धा का शरीर श्मशान घाट के किनारे रखा था। फाल्गुन का शैशवकाल था। बसन्त की आगमनाकांक्षा से प्रकृति विहंस रही थी। वायु का एक वेग आया और शव के ऊपर से होता हुआ चला गया। श्मशान के कण-कण के उत्सुक कानों ने कुछ सुना और एक मूक भाषा में पुकारा उसे।

'मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ'

'और मैं तुम्हें......'

लाल सुरा

टन-टन-टन !! मिल की घंटी बजी। युवक ने हाथ में रोटी का कौर लिए हुए शिर उठाया, धीरे-धीरे शिर झुकाया, कौर थाली में रख दिया और एक लम्बी सांस भर कर उठ खड़ा हुआ। रसोई में बैठी हुई वृद्धा ने उसे एक करुण दृष्टि से देखा पर उसे इतना अवकाश न था। पाँच मिनट पश्चात् वह अपने साथियों के साथ जोड़ रहा था मिल के अन्दर टूटे हुए सूत।

हाँ, तो उसका यही नित; प्रति का कार्य था। यदि कोई उसके निकट जाता तो वह बात करता जाता परन्तु देखता था सदैव उन्हीं भागते हुए सूतों को जिनसे उसे मिलती थी उसकी जीविका उसकी उङ्गलियाँ बकुले की भाँति ताक लगाए बैठी रहतीं। कोई सूत टूटा नहीं कि उसने जोड़ा नहीं। वह अपने कार्य में इतना सतर्क रहता कि नए मनुष्य को उस पर आश्चर्य होता परन्तु, उस विशाल भवन के भीतर सभी मनुष्य जीवित मशीन थे। सन्ध्या को जब छुट्टी हो जाती तो अपने वह घर लौट आता। मार्ग में उसके साथी साथ रहते परन्तु सब के मुख पर रहतीं अपने काम की बातें। घर पहुँच कर वह वृद्धा माँ की परोसी

हुई थाली पर बैठ जाता। इसके पश्चात् वह थोड़ी देर के लिए बाहर निकलता था। रविवार को उसका भाग्यपूर्ण दिवस होता। शनिवार को उसकी साप्ताहिक मजदूरी मिलती इस लिए रविवार को वह धनी के समान आधी मजदूरी अपनी माँ को देता है और शेष की पीता था शराब।

उन्हीं दिनों की बात है जब सारे शहर में शान्ति थी सुख था लोग हँसते थे और खेलते थे उन्हीं दिनों उसकी बूढ़ी माँ दुनियाँ को एक हसरत भरी निगाह से देखा और दूसरे ही क्षण लोगों ने कहा—इसका शव श्मशान तक पहुँचाना होगा। पर वह—वह तो मिल में था—साहब छुट्टी माँ मर गई है। नहीं। उफ़! रात को वृद्धा ने अन्तिम संस्कार पाए। युवक अन्धकार पूर्ण उस तिमिर रात्रि में शव ले गया और ले गया उसी के साथ अपना हतज्ञान।

दूसरे दिन वह फिर अपने काम पर हाजिर हुआ परन्तु अब उसमें न तो वह स्फूर्ति थी और न था वह साहस उसकी तेज आंखें आज अपने सामने सूतों को न देख कर अन्धकार देखती थी। कितने ही सूत टूटे और चले गए परन्तु वह उन्हें न पकड़ सका। लोगों ने देखा चेतावनी दी परन्तु वह बेचारा क्या करता जब आखें ही नहीं देखती तो दिमाग़ क्या करे वह चुप रहा।

तीन दिन तक यही हाल रहा। तीसरे दिन प्रातःकाल मिल के फोरमैन ने आकर उसे २४ घंटे की नोटिस दी। उसने संसार को देखा एक दृष्टि से और समझा दूसरी दृष्टि से। जो कुछ भी हो परन्तु उसके पश्चात् कुछ नहीं हुआ।

तीन मास पश्चात् ....

रोजगार की खोज में घूमते हुए शहर की निराशपूर्ण सड़कों पर उसने देखा, वह दौड़ी जा रही थी। यौवन का उभार था। मजदूर ने उन आँखों में अशान्ति तथा क्षुधा देखी। पर अन्य देखने वालों ने उसके शरीर में देखा, अतृप्ति, वासना—न जाने क्या क्या? मजदूर ने सोचा आह! एक दिन था जब इस बालिका का जीवन भी सुखमय था, परन्तु अब बेकार। पिता अपने बच्चों के भोजन का भार न सह कर कहीं दूर चला गया। इन्हें छोड़ कर जिसे परलोक कहते हैं वह

उनको प्रतिक्षण देखता रहता है। ईश्वर जाने इसमें क्या रहस्य है?

वह विचार में लीन था। तीन दिन का भूखा मस्तिष्क अधिक न सोच सका; वह बैठ गया। दूसरे क्षण उसने देखा लोग उसके पीछे दौड़े आ रहे हैं और वह पागल हिरणी सी आगे-आगे भागी आ रही है। उसके हाथ में कुछ फल है। उसने एक भय भरी दृष्टि से पीछे देखा लोग निकट ही थे उसने फल फेंक दिये और आगे भागी पर भला वे कब पीछा छोड़ सकते थे।

मजदूर ने साहस किया और उठ कर खड़ा हो गया। भूखी इन्द्रियों ने दौड़ कर फलों को उठा लिया और खाने लगी। लोगों ने बालिका को पकड़ लिया! साथ ही पकड़ लिया उस भूखे मजदूर को।

कई दिन पश्चात् न्यायालय में जज ने यह आज्ञा पढ़ी—

"—पता नहीं चलता की चोरी युवक ने या लड़की ने की; परन्तु युवक चोरी स्वीकार करता है इसलिए उसे तीन मास का कारावास और लड़की को सन्देह के परिणाम स्वरूप स्वतंत्र की जाती है।"

दिन बीतने लगे। मजदूर के जीवन में पागलपन के स्थान पर एक दूसरी मूर्ति ने प्रवेश किया। निस्पृह जीवन में आकर्षण आया और उसी क्षण से उसमें नवीन स्फूर्ति का अनुभव होने लगा जेल के पश्चात् उसने बालिका को खोजने का प्रत्यत्न किया पर वह न मिली। उगती हुई आशा का उभार होते ही फिर पानी पड़ गया। इससे अच्छा तो वह जेल में था। एक स्मृति आई दूसरे दिन वह चोरी के अपराध में फिर जेल में था।

एक बार फिर वह स्वतंत्र—संसार की दृष्टि में—पर अपनी दृष्टि में परवश होकर निकला। इस बार उसमें शान्ति न थी पर थी जेल के जीवन से घृणा। भूखा प्यासा वह चला जा रहा था आगे—शहर से दूर बहुत दूर न जाने कहां? भूख की ज्वाला से जलते हुए हृदय में शक्ति न थी शरीर गिरा जाता था। वह बैठ गया फिर न जाने कब उसका शरीर लेट गया।

कुछ क्षण के लिए उसके जीवन में एक आकर्षक दृश्य उपस्थित हो गया। वह एक विस्तृत हरीत मैदान के कोने में सरिता के तट पर अपनी कुटिया के बाहर रक्खे हुए शिला खण्ड पर बैठा है और

निकट ही बैठी है वह बालिका। एक छोटा बालक खेल रहा है। बालिका उठी और तुलमुल करती सरिता की लहरों के साथ छप-छप करने लगी। मजदूर हँस रहा था। कुछ-क्षण पश्चात् युवक उठा और अपनी कोठरी के भीतर आकर बैठ गया। बालिका ने भोजन परोसा और रख दिया। युवक खाने लगा यह उसके जीवन का सर्वोत्कृष्ट सुखपूर्ण समय था और था सम्भवतः अन्तिम क्षण! युवक ने कहा—प्रिये इस जीवन में कितना सुख है? कितना मद है? स्वार्थ-पूर्ण संसार से, जहां भोजन के एक टुकड़े के लेने को चोरी कहते हैं यह स्थान कितना सुन्दर है। अब हम यह स्थान न छोड़ेंगे। बालिका ने मन्द-मन्द मुस्कान से उसका हृदय भर दिया दूसरे क्षण वह उसके बाहुपाश में थी कुटिया के बाहर से किलकारी मारता हुआ बालक आया और दोनों की छाती पर धम से कूद पड़ा। यही उसका अन्तिम सुख क्षण था।

दूसरे दिन प्रातःकाल—

लोगों ने देखा एक मनुष्य जिसकी आंखें धंसी हुई थीं वृक्ष को अपने हांथों से लिपटाए पड़ा था और पड़ा था उसकी छाती पर किसी उलूक द्वारा दो खंड किया एक कौवा। मुख पर मुस्कान थी पर वह मनुष्य नहीं था प्राणहीन था।

लोगों ने समवेदना की एक सांस ली पर उन्हें क्या ज्ञात था कि वह उसी लोक में है जहां उसे अपरमित सुख है।

केवल उसके बाहुपाश वद्ध उस वृक्ष ने अपना सिर हिलाया उसे ही यह ज्ञात था। कि युवक ने क्यों सदैव के लिए नेत्र बन्द कर लिया।

रामनाथ ने कहा —आज चलो नदी का पूर देख आवें।

नरेश सोच न सका कि क्या उत्तर दे। समय उसके पास रहता नहीं। कालेज से लौट कर उसे पढ़ाने जाना होगा वहां से लौटेगा तब खाना बनाने का प्रबन्ध करना पड़ता है। और यह ट्यूशन वाले समझते हैं कि जो दस रुपये माहवार देते हैं तो फिर आखिर मास्टर साहब को गैर हाज़िरी करने का अधिकार क्या ?

कुछ न बोला तो रामनाथ ने फिर कहा—यहां से तुम मेरे साथ घर चलो वहां चाय पानी के बाद चलेंगे।

प्रोफेसर साहब की दृष्टि इसी ओर को थी। नरेश ने रामनाथ का हाथ दबा दिया और दोनों प्लेटो के आदर्शवाद को समझने का प्रयत्न करने लगे।

थोड़ी देर बाद घंटा बज उठा। रामनाथ नरेश का हाथ पकड़े बाहर निकला। दोनों ने बाइसिकिल उठाई और चल पड़े। चौराहे से नरेश का रास्ता बदलता है, जो उसने बाइसिकिल मोड़नी चाही तो रामनाथ ने कहा—अरे, मुझे तुम्हारा यह नखरा पसन्द नहीं, चलो इधर।

नरेश की बांह उसने पकड़ ली तो गिरने के भय से उसने बाइसिकिल मोड़ दी। बहुत कहा उसे बड़ा काम है पर भला रामनाथ कब सुनने लगा।

रामनाथ की मित्रता नरेश से वर्षों से है। पर नरेश किसी के यहां जाता बहुत कम है। पिछले वर्ष जब नरेश ने यूनिवर्सिटी में प्रवेश किया था तभी पहले दिन रामनाथ से उसका परिचय हो गया। फिर दोनों घनिष्ठ मित्र होगये। पर नरेश आज तक रामनाथ के यहाँ नहीं जा सका। जाना भी वह नहीं चाहता।

कमरे में दोनों बैठे रहे तो कला चाय लेकर आई अच्छी सुन्दर सलोनी लड़की है। यौवन उभर कर निकला चाहता है। ट्रे मेज पर रखते हुए मुसकरा कर कहा—नरेश भैय्या नमस्ते। नरेश का हृदय स्नेह से भर आया।

वह चाय पी रहा था पर गम्भीर हो गया था। रामनाथ ने देखा कुछ अनुभव किया पर समझ न सका। आखिर नरेश इतना गम्भीर क्यों हो गया।

तभी उसने पुकारा कला पान दे जाओ।

दोनों पूर देखने जा रहे थे पर नरेश कुछ चिंतित सा हो गया। रामनाथ ने पूंछा तो जैसे हृदय का बांध टूट गया, बोला—रामभाई, मेरा जीवन कठोर परिस्थितियों का खिलौना है, विपत्ति मेरे साथ खेल करती और मैं उसके इंगित पर नट की भांति काम करता हूँ। देखो न पारसल जून के महीने में इंटर की परीक्षा फल सुनने के बाद यहां आया था तब से घर जाने की नौबत नहीं आई। छुट्टी मिलती नहीं गर्मी की छुट्टी में सोचा जाऊंगा तो रायसाहब को गर्मी में भी बच्चों को पढ़ने से छुट्टी देना ठीक न जचा। जैसे मास्टर साहब कोई मशीन हों जिसे अवकाश की आवश्यकता नहीं। कितने दिन हो गए मां को, भाई को, निर्मला को देखे।

तभी रामनाथ को निर्मला नाम में कुछ रहस्य सा जान पड़ा तो पूंछ ही लिया—निर्मला कौन ?

मेरी छोटी बहिन है; आज कला को देखा तो उसकी याद आ गई। बिल्कुल इसी जैसी, लेकिन है बड़ी अभागी, शायद पिता वर्षों से

उसके विवाह के लिये परेशान थे किन्तु कहीं ठीक न हुआ और वे मर गये। और अब मैं हूँ जिसे अपनी जिम्मेदारी का कोई जैसे अनुभव ही नहीं। एक सांस में नरेश कहता गया।

रामनाथ ने सब कुछ सुना; कुछ कहने की एक लहर उठी पर उसने रोक लिया अभी लहर की पूर तक चलना होगा।

परीक्षा समाप्त हो गई तो नरेश अपने गांव चला गया। रामनाथ के पत्र आते जाते थे कि एक दिन तार मिला—तुम्हारे गांव आ रहा हूँ कल सबेरे पहुँचूंगा। घबराया हुआ नरेश स्टेशन पहुँचा। मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई तभी घर का ख्याल आया तो एक वेदना सिहर उठी।

रामनाथ दो ही दिन में घर का सा बन गया। मां से घंटों बात करता, निर्मला को चिढ़ाता, लल्लू को अंग्रेजी के नये शब्द बताता पर जब नरेश से बात करता तो जैसे उसने बड़ा जीवन देखा हो बिल्कुल गम्भीर होकर।

तीसरे दिन रामनाथ ने चलने की तैय्यारी की तो घर भर के लोगों को दुःख हुआ पर रुक तो वह नहीं सकता था। माँ के पास द्वार पर निर्मला खड़ी थी। आंखों में आंसू झलक आये। नरेश ने देखा तो सोचा आज यदि मैं धनी होता तो निर्मला के लिए रामनाथ ऐसा ही लड़का खोजता।

रामनाथ हँस रहा था – बोला अब तो यह दरवाजा जान गया आता ही जाता रहूँगा।

रास्ते भर नरेश गुम शुम सा अपने में ही खोया रहा। गाड़ी आने में थोड़ी देर थी। टिकट लेकर वे प्लेट-फार्म पर टहलते रहे। नरेश अब भी चुप था। रामनाथ की आवाज सुन कर उसकी विचार धारा टूटी, बोला—क्या रामू भाई।

रामनाथ को वह रामू भाई ही कहता था।

'निर्मला के लिए मैं तुम्हें एक लड़का बता सकता हूँ।'

नरेश को जैसे सहारा मिल गया। बोला—मेरी हर बात से तुम परिचित हो गये। ऐसा ही हो जो तै हो जाय।

'रामनाथ क्षण भर चुप रहा फिर बोला—यदि मैं अपने को···
भक-भक करती ट्रेन की आवाज में उसकी आवाज डूब गई।

और जब ट्रेन चलने लगी तो रामनाथ ने कहा—सब मैं ठीक कर दूंगा। विवाह इसी जुलाई में होगा।

सुहाग की रात को निर्मला ने रामनाथ के बालों से खेलते हुए कहा—तुम किसी के यहां जाने योग्य नहीं हो।

'क्यों ?' रामनाथ ने आश्चर्य से पूंछा।

वह हंस कर बोली—मेरे यहां गए तो मुझे पकड़ लाये दूसरे के यहाँ जाओगे तो दूसरी को पकड़ लाओगे।

'लेकिन जब दूसरा नरेश हो तब तो' उसने कहा।

छलना

१

अमर और लता वे दो थे। दोनों नव जवान यौवन की गुलाबी सुरा दोनों के नयनों में मदमाती नशा बन छाया हुआ था। लता बेसुध थी, सम्भव है उसे ज्ञान भी न रहा हो कि कब यौवन ने चुपके से आकर उसके गुलाबी गालों में गुलाल मल कर होली खेलना शुरू कर दिया था। उसका वही अल्हड़पन वही शैशव के खेल, वैसी ही चंचलता थी! कहते हैं यौवन में एक प्रमाद होता है, एक नशा है और होता है अपने को खोकर कुछ पा लेने की आकांक्षा! लता में यह सब कुछ था या नहीं यह तो कहना असम्भव है लेकिन कभी-कभी जब वह अपने अलसाये नेत्रों से किसी की ओर देखती तो सहसा ऐसा ही मालूम होता मानो उसका कुछ खो गया हो और वह चकित हिरणी की भांति उसे खोजने का प्रयत्न कर रही हो।

वह पढ़ती थी। स्थानीय गर्ल्स स्कूल के नवें दर्जे में। पढ़ने में तेज

थी यह तो नहीं कह सकते पर हाँ अनुत्तीर्ण होने का उसे आज तक अवसर ही न मिला था। शायद सफलता सदैव उसके सम्मुख रहती थी। ठीक वैसे ही जैसे उसके कोमल अधरों पर मधुर मुस्कान। हँसना, हंस कर जीवन के साथ खेल करना मानों यही उसने सीखा था। सीखा था नहीं, बल्कि उसका यही स्वभाव था कभी किसी ने उसे दुखी न देखा। देखता भी कैसे उसके जीवन में तो ऐसा कोई अभाव था नहीं जिसके लिये कभी उसे कष्ट हुआ हो तो, कभी उसने यह सोचा होता। लेकिन फिर भी जल्द परेशान होना, दिल में एक उजलत पैदा करना उसकी प्रकृति थी! पढ़ती-पढ़ती जब वह कुछ न समझ सकती तो झुँझला उठती। भावुक थी। यौवन में शायद भावुकता अधिक बढ़ जाती है; कल्पना की शिरायें प्रबल हो उठती हैं। उसकी भी यही दशा थी।

पिता नौकर थे एक अच्छे पद पर। अच्छी आय थी। लड़की को पढ़ाने का शौक़ था और इसी कारण तो उन्होंने अपनी आँखों की पुतली लता को पढ़ने के लिये ही अपने पास से इतनी दूर पर रखा था। पिता के दूर के रिश्ते के ताऊ लगते थे उन्हीं के यहाँ पिता ने लता को छोड़ रखा था। हॉस्टल शायद स्कूल में था ही नहीं। कभी-कभी आते और देख भाल कर जाते।

दिवाकर को लता के पिता ने ही पाला था यदि यह कहे तो अनुचित न होगा। बेचारा ग़रीब था परन्तु उन्होंने उसे पढ़ाया लिखाया था। वह नौकर था एक सरकारी दफ़्तर में। पर लता के पिता ने अपनी कन्या का भार उस पर न छोड़ा। दिवाकर कभी कभी आता लता का हाल चाल ले जाता; उसकी देख भाल कर जाता। उसकी जरूरतों का उसकी आवश्यकताओं का जैसे उसे बड़ा ध्यान था।

और लता भी तनिक सी आवश्यकता होने पर दिवाकर भैया को ही याद करती। दिवाकर पर अटल विश्वास था उसे उस दिन जब वह स्कूल जाने के लिए तैयार हो कर खाने के लिये पहुँची तो मालूम हुआ कि महरी अभी अभी आई है। चौका बर्तन कर रही है। खाना बनने में काफ़ी देर लगेगी। और तब लता क्या करे! बिना खाये ही स्कूल चली जाय एक प्रश्न था। अभी अरसे तक बीमार रही है।

निहायत कमज़ोर हो गई है। फिर भी खाने पीने का ठीक न रखे यह कैसे सम्भव है। तुरन्त ही उसने नौकर को भेज कर दिवाकर को बुलाया। निकट ही, कुछ दूर पर वह रहता था तुरन्त आया—बोला—क्या है लता ! क्या बात है।

'कुछ नहीं भैया, यहाँ खाने का सुबह रोज़ ही झंझट रहता है ! तुम जानते हो साढ़े नौ बजे तांगा आ जाता है और साढ़े नौ बजे तक खाना तैयार होना मुश्किल ही रहता है।

'तो मैं रोज़ आकर तुम्हें नौ बजे लेता चला करूंगा हमारे यहाँ तो खाना तैयार हो ही जाता है। वहीं इस वक्त खा लिया करो को फिर वहीं से स्कूल चली जाया करो। दिवाकर ने तुरन्त उत्तर दिया।

नहीं दिवाकर भैया तुम रोज़ सुबह मेरे लिये कुछ फल भेज दिया करो। मैं सुबह दूध और फल ही खाया करूंगी।'

दिवाकर मान गया। उस दिन से रोज़ फल आ जाता दिवाकर का नौकर दे जाता।

उसी घर में किराया देकर एक कमरे में रहता था।अमर भी ग़रीब, कम सख़ुन और लजीला। उसके और भी कोई था या नहीं पर यह कभी किसी ने जानने की कोशिश भी न की। कई बर्षों से यह उस घर के बाहर वाले कमरे में रहता। खाना कहीं और खाता और रात में आकर पड़ रहता। कमरे में थोड़ा सा सामान था। एक छोटी मेज़ दो कुर्सियाँ एक चारपाई एक बक्स और एक आलमारी जिस पर किताबें थीं। कितने ही मासिक तथा सप्ताहिक पत्र उसके कमरे में पड़े रहते। क्या करता किसी को कुछ पता न था। हाँ एक ट्यूशन थी उसके पास सुबह वहीं जाता और फिर दिन भर बैठा लिखा करता कहानियाँ। यही उसकी जीविका थी। जीविका ही कहिए क्योंकि वह कहानियों द्वारा काफ़ी आय कर लेता।

सीधा था। खद्दर का कुर्ता खद्दर की धोती यही उसकी पोशाक थी। कभी किसी ने उससे बातचीत करके यह भी न अनुमान किया होगा कि उसने भी विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि ली है।

उस घर से उसका जैसे कुछ अपनाया सा हो गया था। घर का

सा ही वह था लेकिन कभी किसी ने उसे अन्दर आते न देखा। हाँ, जब घर में कोई बीमार होता तो वह रात-रात भर जाग कर उसकी सेवा करता। सब की तीमारदारी करना ही मानो उसके जीवन का उद्देश्य रहा हो।

उस दिन जब पहले-पहल लता उस घर में आई तो उसे आश्चर्य हुआ। परन्तु किसी के सम्बन्ध में कुछ मालूम करने का प्रयत्न करना उसका स्वभाव न था। हाँ, उसने देखा अवश्य लता को विस्मय और आश्चर्य से।

लता ने भी उसे देखा। आँखें चार होते ही वह जमीन देखने लगा। फिर लता को उसने अक्सर जब वह अपने कमरे में बैठा रहता तब लता दरवाजे पर आकर खड़ी। सड़क पर आते-जाते हुए लोगों को देखती पर कभी उसने कुछ पूंछा नहीं। लता सोचती कितना दुखी है व्यक्ति।

एक दिन कमरे में बैठा अमर नई आई हुई एक कहानी पत्रिका पढ़ रहा था कि मकान मालिक की लड़की आगई। पत्रिका को देखते बोली —अमर दादा, इसमें तुम्हारी कहानी छपी है क्या ?

'हाँ, अमर ने संक्षेप सा उत्तर दिया। उसका ध्यान एक कहानी पढ़ने में लगा था।

'तो इसे मुझे दो लता को दिखाऊँगी। वह कहानी बहुत पढ़ती है।'

'अच्छा, तो जरा पढ़ लेने दो फिर ले जाना।'

'तुम फिर पढ़ लेना।'

'और तुम्हीं फिर पढ़ लेना।'

'नहीं' मैं तुम्हारी कहानी लता को दिखाऊँगी। मैंने उससे कहा था कि तुम कहानी लिखते हो तो वह कहने लगी लाना तो उनकी दो चार कहानी देखूँ कैसी लिखते हैं।'

'मुझे कुछ इम्तहान नहीं देना है।' अमर ने हँसते हुए कहा।

'अरे हम लिये थोड़े ही लेती हैं माँग रही थीं। वे तो तुम्हारी कहानी पढ़ना चाहती है। मैंने कहा था कि तुम बहुत अच्छा लिखते हो।'

'भला मैं क्या अच्छा लिखता हूँ। इसमें एक से एक बढ़िया कहानियाँ हैं।'

अमर को एक जिज्ञासा सी हो रही थी।

'उंह! तुम तो बेकार बात करने लग गये अरे, लाओ भी तो तुम अपनी पत्रिका।'

'लड़की छीनने चली। अमर ने उसे रोकते हुए कहा - ठहर, एक पेज रह गया है देता हूँ।'

पढ़कर उसने मासिक पत्रिका दे दी। लड़की लेकर भीतर भाग गई।

अमर की कहानी का शीर्षक था 'एक तस्वीर।'

लता ने कहानी पढ़ी। उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानो कहानी कुछ उस से कहना चाहती है। पर वह कह नहीं पाती। उसी दिन से उसने अमर को पहचाना।

दूसरे दिन जब वह स्कूल जा रही थी उसी समय अमर ट्यूशन पर से लौटा। लता ने ताँगे की ओर जाते हुए देखा अमर कमरे का ताला खोल रहा है उसके हाथ नमस्कार करने के लिये उठ गए। अमर जैसे घबड़ा सा गया इस आकस्मिक नमस्कार से। ताला खोलने का ध्यान उसे न रहा उसने दोनों हाथ जोड़ लिये। चाभी हाथ से गिर पड़ी। ताँगे पर बैठी हुई अन्य लड़कियाँ मुस्करा पड़ी अमर का मुंह लज्जा से झुक गया लता मुस्कराती हुई ताँगे पर बैठ गई और अमर जमीन पर गिरी चाभी उठाने लगा।

२

जिस दिन हेड मिस्ट्रेस का यह नोटिस दर्जे में सुनाया गया कि कोई भी लड़की जो ४० प्रतिशत से कम नम्बरों से पास होगी उसे नवीं क्लास से प्रोमोशन न दिया जायगा उस दिन लता परेशान हो गई। हेड मिस्ट्रेस सोचती थी आगामी स्कूल हाई स्कूल होगा। नवीं कक्षा से जाने वाला यह बैज पहला ही है जिसे उनका स्कूल बोर्ड की परीक्षा में भेजेगा इसलिये वे चाहती थी कि चाहे चार लड़कियां ही क्यों न भेजी जांय पर पास वे सभी हो जांय।

लता की परेशानियां बढ़ गई। बर्ष के प्रारम्भ में वह कई महीने तक बीमार रही यद्यपि वह कक्षा में अधिक कमजोर न थी फिर भी उसे अपने ऊपर विश्वास न था। वह जानती थी कि यदि किसी प्रकार वह नवीं कक्षा में उत्तीर्ण भी हो गई तो आगे उसे कठिनाई झेलनी पड़ेगी। उस दिन लता को परेशानी में ही बीतें। घर लौट कर आई तो किसी काम में उसका जी न लगा। जब-जब वह पुस्तक खोलती पढ़ने का प्रयत्न करती उसे ज्ञान पड़ता जैसे वह उत्तीर्ण न हो सकेगी। इतिहास और हिन्दी में तो वह विशेष रूप से कमजोर थी ही। गणित में भ यह कमजोर हो गई थी।

एक कोंच पर वह जाकर लुढ़क रही। हाथ में किताब थीं किन्तु पढ़ने की इच्छा न होती थी। नौकर आया बोला-बीबी जी, चाय लाऊँ ?

रामनरेश लता का पुराना नौकर था। जब वह नौकर हुआ था लता अपनी मां की गोद का खिलौना थी। रामनरेश ने ही उसे पाला था। रामनरेश के हृदय में लता के प्रति पैतृक भाव थे। अपनी पुत्री की भाँति ही वह लता का ध्यान रखता। उसे लता का आज स्कूल से आते ही इस प्रकार लेट रहना आश्चर्यजनक मालूम हुआ! क्षण भर तक वह लता की ओर ध्यान से देखता रहा। फिर जब उसने देखा कि लता कुछ उत्तर नहीं दे रही है तब उसने फिर पूंछा—क्या है बीबीजी, आज तुम्हारी कुछ तबियत खराब है क्या ?

लता ने शायद उसका पहला प्रश्न सुना हीं नहीं था। बोली—नहीं तो ?

'तब फिर इस प्रकार क्यों पड़ी हो ?'

'ऐसे ही रामनरेश !'

लता ने उत्तर दिया पर रामनरेश ने अनुभव किया जैसे लता को कुछ कष्ट का अनुभव हो रहा था पर वह छिपाने का प्रयत्न कर रही थी रामनरेश ने फिर पूंछा—तो चाय ले आऊँ !

नहीं मुझे ऐसे ही पड़ी रहने दो।'

रामनरेश कोंच के निकट बैठ गया। लता के सिर पर हाथ फेरता

हुआ बोला—क्या बात है आज तुम कैसी हो रही हो। बताती क्यों नहीं क्या कष्ट है।

'कुछ नहीं रामू! मुझे अकेले पड़ी रहने दो!'

'पड़ी रहने दूँ। बिटिया। भला यह कैसे हो सकता है। स्कूल से आये कितनी देर हुई। रोज तुम आते ही मुझसे चाय लाने को कहती थी पर आज इस प्रकार पड़ी हो आखिर कोई बात भी है।' रामू का हृदय पिता के हृदय की भांति भर आया।

कुछ नहीं रामू, तुम व्यर्थ परेशान होते हो आज मैं थक गई हूँ बहुत इसीलिये इस तरह पड़ रही। भला इसमें भी कुछ सोचने की बात है। चाय पीने की इच्छा ही नहीं है।'

'लेकिन चाय पीलो तो सारी थकावट दूर हो जायगी। मैं जाता हूँ।'

लता रोक न सकी। भला रामू उसकी कठिनाइयों को, उसकी परेशानियों को क्या समझे। लता सोचती हुई पड़ी रही उसका जी होता था कि वह इस कोलाहल से इस परेशानी से अपने को कहीं दूर खींच ले जाय पर ले जाय तो कैसे ?

चाय बन कर आ गई। लता को उठना पड़ा। रामू ने छोटी मेज खिसका कर चाय रख दी। लता ने उदासीनता के साथ चाय का प्याला उठा लिया। रामू सेब की फाकें काटने लगा एक घूंट पीकर लता ने चाय रख दी।

रामू ने पूंछा—क्यों क्या बात है ?

कुछ तो नहीं पीती हूँ। जरा अभी गरम है।'

'अच्छा' कहकर रामू सेब काटने में लग गया। लता उसकी ओर देखती रही। कितना भोला है यह बूढ़ा भी और कितना स्नेह करता है उसे लता ने सोचा। रामू के जीवन में लता ही है। उसके और है ही कौन स्त्री बीसो वर्ष हो गये मर गई। एक लड़की थी उसे पाल पोस कर बड़ा किया विवाह किया तो दामाद उसे लेकर परदेश चला गया। रामू ने सुन रखा था कि वह रंगून में कहीं पर है पर आठ सात वर्ष हुए कुछ खबर न मिली उसकी। जब तक वह जमशेद पुर के कारखाने में काम करता था तब तक तो वह कभी-कभी

पत्र लिख भी देत था। रामू के उजड़े जीवन में दामाद का कुशल क्षेम पहला वह पत्र ही काफी था। साल भर में जो कुछ वह बचा पाता उसे वह अपनी लड़की के पास भेज देता परन्तु जब उसने सुना कि वह रंगून चला गया तब से उसका एक भी पत्र न आया। उसकी बेटी रधिया का क्या हुआ उसका उसे पता न लग सका। रोकर रह गया बेचारा। तभी से रामू ने अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम लता पर ही केन्द्रित कर दिया। लता उस समय केवल सात आठ वर्ष की अबोध बालिका थी पर आज की लता में और उस समय की लता में बहुत अन्तर हो गया है। रामू तभी से लता के साथ रहा। यों तो लता के अन्य और भाई बहिन हैं पर रामू को जाने क्यों इस लड़की से इतना स्नेह हो गया है।

लता चाय पी चुकी तब रामू ने पूछा बिटिया अगर जी ठीक न हो तो चलो थोड़ा घूम आओ तबियत बहल जायगी।

नहीं रामू! परीक्षा निकट है और मुझे पढ़ना बहुत है कहीं न पास हो सकी तो बड़ी आफत आयेगी।

आफत क्या आयेगी। इस साल तो तुम योंही बहुत बीमार रहीं। भगवान ने तुम्हें अच्छा कर दिया यही क्या कम है। फिर पढ़ कर तुम्हें कुछ नौकरी तो करना है नहीं जिसकी तुम्हें इतनी फिकर पड़ रही है। अरे इस साल न सही अगले साल सही।

लता मुस्करा उठी, बोली—रामू ठीक कहते हो पर फेल होने में कितनी लज्जा मुझे उठानी पड़ेगी यह भी सोचते हो?

रामू ने मानो यह बात सोची ही न थी बोला लज्जा! अरे सब जानते हैं कि मेरी बिटिया कभी फेल नहीं हुई इस साल भी यदि वह इतना बीमार न होती तो न फेल होती। बाबा तुम अपने स्वास्थ्य का ज्यादा ख़्याल रखो और सब बातों का झंझट छोड़ो।

लता हंस कर चुप रह गई।

जब रामू चला गया तब लता ने कुर्सी खिसका कर मेज के निकट बैठ गई। कल उसे इतिहास की गुरू जी का काम दिखाना होगा उसने किताब और कापी खोली। प्रश्न को देखा पार्लियामेंट का विकास कैसे हुआ स्पष्ट रूप से लिखो।

लता के कुछ समझ में न आया। बार बार पुस्तक से इस प्रश्न का उत्तर खोजने लगी। पर कुछ समझ न पड़ा। अङ्गरेजी की किताब उठाई पर दूसरे ही क्षण ध्यान आया इतिहास का काम न किया रहेगा तो कल ही मिस साहब की फटकार सुननी पड़ेगी। पर वह लिखे तो क्या ?

उसने सोचा चलो आज असीम से पूंछा जाय ! आखिर वह भी हाईस्कूल के विद्यार्थी को पढ़ाता है। इधर लता का असीम से काफी परिचय हो गया था। बहुधा वह उसके कमरे में जाकर कहानियों की किताबें तथा मासिक पत्र पढ़ने के लिये लाया करती थी। परन्तु आजतक कभी उसने असीम से कुछ पूंछा न था और न असीम ने ही उससे उसकी पढ़ाई के सम्बन्ध में कुछ पूंछा था।

लता ने पुस्तक बन्द कर दी और उठकर असीम को देखने के लिये बाहर आई। देखा तो असीम बैठा अपने कमरे में कुछ लिख रहा था। पहले तो लता ने सोचा—शायद कोई कहानी लिख रहा हो क्यों उसके काम में हस्तक्षेप किया जाय। हो सकता है कुछ बुरा भी मान ले परन्तु फिर उसने सोचा नहीं असीम ऐसा नहीं कितना सज्जन है, सरल है। अवश्य ही बता देगा। और फिर वह खाली बैठा ही कब रहता है कभी कुछ पढ़ता रहता है और कभी कुछ लिखता रहता है। इसी सोच बिचार में लता असीम के कमरे के द्वार पर आ खड़ी हुई।

असीम लिखने में मग्न था। उसे यह पता भी न लगा कि लता आकर उसके दरवाजे पर खड़ी है। थोड़ी देर बाद लता ने धीरे से पूंछा—क्या मैं आ सकती हूँ।

असीम ने सिर उठाया, देखा और तुरन्त ही उत्तर दिया—हां हां, इसमें पूंछने की क्या आवश्यकता !

'आप लिख रहे थे सोचा आपको कष्ट न पहुँचे ?'

'अरे, लिखना पढ़ना तो मेरे सम्पूर्ण जीवन का कार्य-क्रम है इसमें भला त्रुटि ही कहां पड़ सकती है।'

'कोई कहानी लिख रहे थे क्या ?'

'नहीं......हां, कहानी ही समझिये।'

'हां' कहानी ही है। एक प्लाट ध्यान में आगया था उसी को सोचा लिख डालूं।

'तो आप लिखें मैं आपका हर्ज न करूंगी।'

'नहीं नहीं अब तो मैं रात में ही लिखूंगा।'

'क्यों ? मेरे आने के कारण !'

'नहीं अब मैं लिखना बन्द करने ही वाला था। आज दिन भर लिखते ही बीता। अब इच्छा नहीं होती।'

लता चुप रही असीम लता की ओर देखता रहा। क्षण भर बाद उसने फाउंटेनपेन को बन्द करके एक ओर रखते हुए पूछा—कहिए क्या आज्ञा है ?

'आज्ञा क्या ? ऐसी ही बैठी थी। इतिहास का एक प्रश्न करने जा रही थी पर लाख दिमाग लगाने पर भी समझ न पड़ा क्या लिखूं तो बाहर चली आई।'

'क्या प्रश्न था !'

लता ने प्रश्न बता दिया। असीम मुस्कराया फिर बोला—देखिये मैं इतिहास का विद्यार्थी नहीं रहा। हाई स्कूल में मैंने भूगोल ही अपना ऐच्छिक विषय चुना था पर मैंने इतिहास पढ़ा बहुत है। याद भी मुझे काफ़ी है। यदि आप चाहें तो मैं आपकी सहायता कर दूं।

'आपको कष्ट होगा मैं कैसे कह सकती हूँ।' लता ने संकोच के साथ उत्तर दिया।'

'कष्ट की बात ? यदि मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूं तो अपने को धन्य समझूंगा।'

'अच्छा !......धन्यवाद ! कापी लाऊं तो फिर !'

'हां, हां,।' असीम ने उत्तर दिया। उसकी दृष्टि दूर क्षितिज से टकरा रही थी।

लता कापी लाई। असीम ने लिखाना प्रारम्भ किया। लता को आश्चर्य हो रहा था कि यह व्यक्ति जो कहता है मुझे इतिहास नहीं आता, जिसने कभी इतिहास नहीं पढ़ा आखिर लिखाता कहां से जाता है।

लिख चुकने के बाद लता अन्दर चली गई और असीम खाना खाने होटल।

दूसरे दिन जब स्कूल की अध्यापिका ने देखा तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि आखिर लता से आज इतना सुन्दर उत्तर कैसे बन पड़ा। लता के उत्तर को उन्होंने दर्जे में पढ़ कर सुनाया।

उस दिन लता खुशी-खुशी घर लौटी।

लता का एक स्वभाव था। वह जिस चीज को या जिस व्यक्ति को पसन्द करती उसे अपना बनाने की उसे अजीब साध थी। उस दिन लता ने निश्चय कर डाला कि चाहे जैसे हो वह असीम को अपने को पढ़ाने के लिये अवश्य रखेगी। उसी दिन उसने पिता को लिखा कि वह दर्जे में बहुत कमजोर है और यदि कोई ट्यूटर पढ़ाने के लिये न रखा जायगा तो वह अवश्य फेल हो जायगी उसने यह भी लिखा कि यदि कहें तो असीम को पढ़ाने के लिए रख लूं। लता के पिता ने तुरन्त ही स्वीकृति भेज दी और दूसरे ही दिन से असीम लता को पढ़ाने लगा।

३

असीम पढ़ा रहा था। ढलते हुए सूर्य की अन्तिम किरणें दरवाजे पर पड़ी हुई चिक से अन्दर आने का व्यर्थ प्रयास कर रही थी। लता के सामने खुली हुई अंगरेजी की पुस्तक थी और असीम समझा रहा था किसी विशेष प्रसंग का आशय। जिस दिन से असीम लता को पढ़ाने लगा है उसी दिन से लता में कुछ विशेष प्रकार का अन्तर दिखाई पड़ने लगा है। वह आशा से पूर्ण सी हो गई है। दिन रात कठिन परिश्रम करती है। उसे परीक्षा का इतना अधिक ध्यान नहीं है जितना कि असीम की प्रसन्नता का। असीम कोई काम करने के लिये लता को देता है और लता उसे चाहे रात भर भी जग कर क्यों न करे सोचती है कि उसे काम कर डालना आवश्यक है नहीं तो दूसरे दिन वह असीम के सामने कैसे जायगी। अपना अभाव वह असीम के सामने प्रगट नहीं होने देना चाहती। वह सोचती है

चाहे जिस प्रकार हो असीम को यही मालूम हो लता बड़ी परिश्रमी है, पढ़ने में बड़ी तेज़ है।

लता को भी कभी कोई शिकायत का अवसर नहीं मिला। रोज ही वह लिखने के लिये बहुत सा काम लता को दे जाता है। लेकिन दूसरे दिन देखता है कि लता ने सब कर रखा है। वह घंटे भर बैठ कर पढ़ाता है और लता के किये हुये कामों का संशोधन रात में करता है। कुछ अपनत्व की अजीब सी भावना वह अनुभव करता है और यही कारण है कि वह उसके साथ इतना परिश्रम करता है। लता के काम के आगे उसे कहानी लिखने का अवसर नहीं मिलता।

उस दिन असीम पढ़ा रहा था। लता पूर्ण मनोयोग के साथ पढ़ रही थी। सहसा वह किसी ध्यान में मग्न हो गई। असीम ने अनुभव किया कि लता कुछ और ही बात सोच रही है तब उसने कहा— आप ध्यान नहीं दे रहीं हैं। यह स्थल विशेष रूप से कठिन है।

लता लजा गई। हां क्षमा करें कह कर वह फिर ध्यान पूर्वक सुनने लगी परन्तु जिस गुत्थी को वह सुलझा रही थी वह कोई साधारण न थी। असीम ने फिर अनुभव किया कि लता आज अपना मन लगाने का प्रयत्न कर रही है परन्तु फिर भी उसकी तबियत लग नहीं रही है। उसने मुस्कराते हुए कहा – आप आज क्या सोच रही हैं। तबियत नहीं लग रही हैं क्या ?

लता ने अपराधी की भांति सिर झुका लिया बोली – नहीं तो यह बात नहीं है। क्षमा कीजिए अब ध्यान से सुनूंगी।

'लेकिन आप सोच क्या रही थीं।' असीम ने पूंछा —

'कुछ नहीं ऐसे ही ?' लता ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

कुछ तो ?'

लता ने संकोच पूर्वक उत्तर दिया—आज आप की एक कहानी पढ़ी थी। उसी से संबन्ध में पढ़ रही थी। बड़ी ही सुन्दर कहानी थी।

धन्यवाद ! छोड़िये कहानियों के चक्कर को। परीक्षा के लिये तैयारी कीजिये।'

आप मुझे कहानियां लिखना सिखा दीजिए।'

असीम हंसा, जी खोल कर हंसा क्षण भर बाद वह गम्भीर हो गया बोला देवि आप जानती नहीं। कहानी लिखना किसी को सिखाया नहीं जाता। हमारा सम्पूर्ण जीवन ही तो कहानी है। नित्य प्रति हमारे जीवन में अनेक घटनायें घटती रहती है जो किसी को भी सफल कहानी कार बनाने में सहायक हो सकती है। कहानी कार तो केवल जीवन की इन्हीं घटनाओं के प्रति सजंता करता है। उसकी कल्पना इन घटनाओं को एकत्र करती है और उसकी इसी पीड़ा को विकल करती है। आप का जीवन दूसरा है आप के जीवन में अभी अनुभूति नहीं फिर अनुभूति की आवश्यकता भी नहीं आप कहानी लिख कर क्या कीजिएगा।'

'लेकिन मैं चाहती हूँ कहानी लिखना।'

व्यर्थ है लता ! जीवन को बारबाद करके कहानी लिखने की सामर्थ प्राप्त करने के पक्ष में मैं नहीं फिर भी किसी को हतोत्साहित करना हिन्दी की हत्या करना होगा और यह मैं नहीं चाहता। आप की यदि इच्छा हो तो आप कहानी लिखें मैं रोकता नहीं। लेकिन इस के लिए आपको अनुभूति उत्पन्न करनी होगी। समाज के हर प्रकार के व्यक्तियों के जीवन को, उनके मनस्तलो को समझने का प्रयत्न करना होगा।

'लेकिन मुझे प्लाट तो मिलते नहीं।'

प्लाट ! जीवन में कथानकों की कमी नहीं नित्य प्रति कितनी ही घटनायें हमारे सम्मुख घटती हैं। हमारा कार्य तो केवल इतना ही है कि हम उन घटनाओं को अङ्कित करदे अपनी कल्पना की तूलिका से उन पर रंग चढ़ा कर।'

'ओह ! काश, मैं भी लिख सकती !'

'लता, हताश होने की आवश्यकता नहीं प्रयत्न करें मुझसे जो सहायता हो सकेगी मैं बराबर आप को प्रदान करूंगा।

'आप मुझे प्लाट बता दिया करें।'

असीम ने लता की ओर देखा। यह नारी भी एक अजीब पहेली है थोड़े दिन हुआ अभी उससे परिचय हुआ और वह कितने निकट आने का प्रयत्न कर रही है। लता कापी पर पेंसिल से लाइने खींच

रही थी उसने असीम की ओर देखा। दोनों की आंखें एक दूसरे से मिल गईं। लता ने दृष्टि नीची करली पर असीम देखता ही रहा।

अतीत की कितनी ही घटनायें उसकी आँखों के सामने नाचने लगीं। उसे जान पड़ा जैसे वे सभी घटनायें अभी बिल्कुल ताज़ी हैं। उसने प्रभा से प्रेम किया था। प्रभा ने भी उसे आशा दी थी। उसे अपने तक पहुंचने के लिये प्रोत्साहित भी किया था। कितने ही दिन उसने आनन्द की कल्पना करने में बिता दिये थे। बी० ए० में वह उसकी सहपाठिनी थी। पोलिटिक्स क्लास में वह आती थी। असीम का उससे परिचय हो गया था। धीरे-धीरे परिचय ने प्रणय का रूप धारण किया। असीम ने एक सुन्दर संसार बसाने की योजना तैयार कर ली लेकिन परीक्षा समाप्त होते ही उसकी महत्वकांक्षायें चूर-चूर हो गईं। प्रभा ने दूसरे युवक से शादी कर ली और असीम का संसार बिगड़ गया। एक वेदना लेकर उसने नये जीवन में प्रवेश किया।

उसी दिन से उसकी स्त्री जाति से श्रद्धा उठ गई। उसने सोचा किसी भी स्त्री पर विश्वास करना मूर्खता है। स्त्री प्रेम का सम्मान करना नहीं जानती। उसके सम्मुख धन और ऐश्वर्य ही सब कुछ है और उसने विवाह न करने का संकल्प कर लिया। आज उसकी आँखें लता के चेहरे पर जा टिकी और बार-बार इसी बात को सोच रहा था। यह नारी भी अजीब समस्या है। परन्तु नहीं वह अपने पर नियन्त्रण रखेगा। नारी के प्रति मोह उत्पन्न होने देना वह नहीं चाहता।

इसी समय लता ने दृष्टि उठाई। असीम की आंखें उसकी आंखों से मिल गईं। इस बार लता की आंखें टिकी रह गईं। असीम देखता रहा उसकी उँगलियां मेज पर पड़ी हुई पुस्तक से खेल रही थीं। सहसा उसे जान पड़ा जैसे कोई गरम चीज़ उनसे छू गई हो। उसकी उङ्गलियां उङ्गलियों से उलझ सी गईं। वह बेसुध सा, दुनियां के परिस्थिति के अस्तित्व से भूला सा उसी तरह देखता रहा। लता उसकी ओर देख रही थी पर उसे जैसे कुछ होश ही न था। कितनी देर तक दोनों इस दशा में बैठे रहे इसका उन्हें पता न था। जब सहसा लता ने अपना हाथ खींच लिया तब जैसे असीम जग सा गया। एक लम्बी आह खींच कर वह उठ कर बाहर चला गया।

४

असीम घर से बाहर निकला। एक ओर को वह बेदिली से चला जा रहा था। उसका सारा उत्साह जैसे छिन्न-भिन्न हो गया था। उसने देखा था जब लता की उँगलियों से उसकी उँगली उलझ गई थी तब लता के चेहरे पर एक लाली दौड़ गई थी लेकिन लता जैसे किसी असीम सुख का अनुभव कर रही थी। असीम को जान पड़ा जैसे लता को जो उल्लास हुआ था उसमें असीम की हार छिपी थी हृदय कहता था मूर्ख तूने एक बार अपना सब कुछ खोकर भी कुछ न सीखा तू अब भोला का भोला ही रहा। स्त्री किसी की होती नहीं; वह तो अपने स्वार्थ की सिद्धि चाहती है उसमें प्रभुत्व की आकांक्षा होती है और वह उसके लिये ही सब कुछ करती है। वह चाहती है किसी न किसी प्रकार पुरुष उसके वश में हो जाय। इसी प्रभुत्व की इच्छा को वह पुरुष की कमजोरी से लाभ उठाने के लिये प्रेम के आश्रय में फलवती करने का प्रयत्न करती है। असीम ने स्त्री के हाथों एक बार हार का अनुभव किया था अब वह बार बार यह अवसर न देना चाहता था परन्तु आज की घटना की क्या उसने कभी कल्पना भी की थी। लता उसके लिये पहेली अवश्य थी पर उस पहेली को वह पहेली ही बनी रहने देना चाहता था उसे सुलझाने की उसकी कभी इच्छा न थी। कुछ बेहोशी की सी हालत में यह सब हो गया और वह समझ न सका। उसने सोचा था कि अपनी इस भूल के सम्बन्ध में लता से स्पष्ट कह दे पर जब उसे होश हुआ तब उसका साहस न हुआ और वह बाहर चला आया।

यही सोचता हुआ वह चला जा रहा था। यदि उसे ऐसा ज्ञात होता तो वह लता को कभी भी पढ़ाने का काम अपने ऊपर न लेता परन्तु अब तो जो भूल हो गई उसका प्रतिकार उसके पास था नहीं। वह किसी प्रकार से भी लता के सामने अपने हृदय की निर्दोषिता प्रमाणित नहीं कर सकता और फिर लता ने क्या समझा होगा। लता ने उसे नितान्त पतित समझा होगा। असीम के सिद्धान्तों को आज भारी चोट पहुँची थी। अच्छा होता कि वह अपने ऊपर काबू रखता।

लता अप्रसन्न हो जाती तो हो जाती पर उसे इस प्रकार हार तो न उठानी पड़ती ।

पर क्या इसमें केवल उसी का दोष है लता का कुछ भी नहीं। आखिर लता ने ही तो उसे इस प्रकार का अवसर दिया और क्या उसका यौवन भूखा नहीं था क्या वह कुछ चाहती नहीं थी। चाहती तो अवश्य थी। नहीं तो कोई स्त्री इतनी निर्लज्ज नहीं हो सकती वह पहले से ही इस अवसर के लिये तैयार ज्ञात होती थी। इसीलिए तो जब असीम की उँगलियाँ उसकी उँगलियों से छू गई तो उसने उन्हें हटाया नहीं। तो क्या लता पतिता है। असीम की विचार धारा को जैसे ठोकर लगी उसने सोचा ऐसा नहीं हो सकता। लता पतिता नहीं हो सकती लेकिन प्रथम प्रेम के अवसर पर ही इतना साहस करना भी तो स्वाभाविक नहीं है।

अपने विचारों की शृङ्खला में उलझा हुआ वह चला जा रहा था कि एक एक्के के सामने आ गया एक्के वाले की हटो बाबू जी, किनारे से बाबू साहब अन्धा है क्या, सुनाई नहीं पड़ता आदि सम्बोधन तो शायद उसे सुनाई हीं नहीं पड़े और वह दबते-दबते बचा। घोड़े का मुँह छू जाते उसकी चेतना लौट आई और वह सकपका कर घबड़ा कर एक ओर को हट गया। उसने देखा वह बीच बाजार में खड़ा है। सामने की दूकान पर दो लड़के खड़े हुए असीम की इस बेसुधी पर हँस रहे थे। असीम को ऐसा जान पड़ा जैसे वह जमीन में धँस जायगा। अपनी दार्शनिकता पर उसे स्वयं क्षोभ हो रहा था। सामने खड़ा हुआ एक्का वाला चौक एक सवारी चिला रहा था। असीम चुप-चाप बिना कुछ कहे एक्के पर बैठ गया और दूसरे ही क्षण एक्के का मरियल टट्टू अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये अपने मालिक को चन्द पैसे दिलाने के लिये घिसलने लगा उस सड़क पर! असीम सोचता हुआ बैठा रहा।

चौक में बड़ी चहल पहल थी। शाम की बिजलियों से सारा चौक जगमगा उठा था। वही लेन देन का व्यापार चल रहा था। हटो बाबू साहब एक ओर अबे देख कर एक्का नहीं हांकता, पोंपों, टुनटुन आदि की ध्वनि से आकाश भर रहा था। एक्का रुक गया असीम

ने जेब से एकन्नी निकाली और एक्के वाले के पास फेंक कर एक ओर को चल पड़ा। 'दो बीड़े पान लगाना' उसे सुनाई पड़ा परन्तु उसका ध्यान इस ओर नहीं था। 'जरा मलमल का थान तो निकालो' पर उसे उससे क्या मतलब ! बाबू जी मेज़ लीजियेगा, पर वह मेज़ खरीदने तो आया नहीं। असीम को ऐसा जान पड़ा मानों चौक अपने यौवन के उभार में मस्त है। यौवन सब का पागल होता है। इसी यौवन में तो भूलें होती हैं लेकिन चौक का तो यौवन अक्षुण्य है कितनों को यह शांतिदायी है ! तो क्या स्त्री के यौवन का उभार, उसके छाती उठान इसीलिये होती है कि वह युवा हृदयों की पीड़ा को शांत करे। पास आने वाले नवयुवकों को शांति प्रदान करे। लेकिन नहीं वह नारी तो ऐसा करती नहीं वह तो अपनी छातियों की उठान से, नुकीले पन से कितनों के हृदय छेद देती है और फिर उन पर मरहम पट्टी करना अपना कर्त्तव्य नहीं समझती। अपनी रूप की आग में वह लोगों को झुलसाना जानती है लेकिन नयनों की सुधा से शांत करना नहीं जानती या शायद शांति करना चाहती ही नहीं। नारी का यौवन बिना प्रेमी के अपूर्ण ही रह जाता है। लेकिन क्या नारी भी यह अनुभव करती है। उसको तो इस ओर देखने का अवसर नहीं वह तो अपने यौवन के नशे में चूर जैसे दिग्विजय के लिये बाहर निकलती है और केवल दिग्विजय करना युवकों के हृदयों को कुचलना ही जानती है।

अरे वह क्या सोच गया। एक व्यक्ति से उसकी टक्कर होते होते बची। वह संभल गया। चौक की रौनक उसे कुछ नई नहीं दिखाई पड़ती लेकिन फिर भी ऐसा जान पड़ता है जैसे चौक की इस दुनिया में दुःख का नाम नहीं। शोक या गम, पीड़ा या वेदना तो मानों शहर के इस भाग के लिये बनी ही नहीं। वह तो शहर के दूसरे हिस्सों में भी रहती है। असीम सोचता है जो लोग यहाँ आते हैं क्या उनके हृदय में पीड़ा न होगी, क्या उसका दिल टीस न उठता होगा। अवश्य होता होगा लेकिन जैसे वे सब कुछ भूल कर यहाँ आते हैं। लेकिन वह तो कुछ भी भूल नहीं पाता। भुलाने का प्रयत्न करता है परन्तु भूल तो वह सकता ही नहीं। अपने को भूल जाना आसान है लेकिन क्या वह अपने इस प्यारे दर्द को भूल सकता है।

वह घूमता रहा बिना मतलब। चौक के एक कोने का चक्कर वह लगा चुका लेकिन उसका जी न भरा। वह चाहता है कि संसार के सौंदर्य को इतना देखे, अपनी आंखों में इतना भर ले कि वह अपने साथ-साथ अपनी पीड़ा को भी भूल जाय पर क्या यह सम्भव है। पर अब चौक का कौन सा कोना उसे देखना बाकी ही रह गया। सुपरिचित चौक के कोने-कोने को तो वह देख चुका अब और क्या देखे वह। घंटा घर के सामने आ कर वह रुक गया। क्षण भर नीलाम के लिये रखे हुए लकड़ी के फ़र्नीचर को देखा। धीरे-धीरे उनका मालिक उन्हें शायद हटा कर ले जाने का प्रयत्न कर रहा था। दो चार ग्राहक अब भी खड़े उससे भाव ताव कर रहे थे। जैसे हताश हो जाने पर भी कुछ प्रेमी पीछे पड़े रहते हैं।

घंटा घर की घड़ी ने टन टन करके नौ बजाये हाथ में लगी हुई घड़ी को उसने देखा। ठीक ही नौ बजे हैं। तो क्या वह ढाई घंटे तक चौक में घूमता रहा कितना समय व्यतीत हो गया। उसने सोचा अब घर चलना चाहिये पर घर का ध्यान आते ही उसे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे किसी बिच्छू ने उसे काट खाया हो वह घर जाना ही न चाहता था अभी लता अपने कमरे में पढ़ती होगी और अरे! उसे ध्यान आया उसने अपना कमरा भी तो नहीं बन्द किया था। लता को बैठा कमरे में पढ़ा रहा था कि पढ़ाते ही पढ़ाते वह उठ कर चला आया। बन्द करने का तो उसे ध्यान ही न आया था। लता ने कमरे को अवश्य बन्द किया होगा। वहाँ जा कर उसे चाभी लता से भी मांगनी होगी वह ऐसा न करेगा। अनजाने में ही उसने लता को अपने घर की स्वामिनी बना दिया था। तब क्या वह घर लौट जाय। लेकिन उसकी इच्छा घर लौटने की न होती थी। घूमता हुआ वह सिनेमा हाल के सामने आ गया।

सहसा जैसे उसे कोई खोई हुई वस्तु मिल गई हो उसने सोचा अभी उसके समय काटने के अनेक साधन हैं। जेब से मनीबेग निकाल कर वह तुरन्त ही उसने देखा। काफी पैसे पास थे। खेल खत्म होने में अभी आध घंटे की देर थी। वह बाहर लगी हुई खेल की तस्वीरों को देखने लगा। सोचने लगा कितना कृत्रिम होता है इन कलाकारों का

जीवन भी जीवन की यथार्थता से तो शायद उनको सम्बन्ध ही नहीं। कितनी देर तक वह एक बोर्ड के ही चित्रों को देखता रहा इसका उसे पता नहीं जैसे भी वह सामने लगी हुई तस्वीरों को देख चुका खेल के खत्म होने की घंटी बजी। फ़िल्म की आलोचना करते हुये भीड़ उसी प्रकार बाहर निकली जैसे जुआड़ी जुये में हार जाने के बाद जुआ घर की निन्दा करते हुए निकलता है।

असीम एक ओर को हट कर खड़ा हो कर भीड़ का जाना देखने लगा। कितने ही व्यक्ति उस बड़े हाल से बाहर निकल कर सड़क पर तितर बितर हो गए। खोमचे वालों की टेर से वातावरण पूर्ण हो गया।

भीड़ के छट जाने पर असीम टिकट घर की खिड़की पर जा खड़ा हुआ और रुपया फेंक कर एक टिकट लिया और पान वाले की दूकान पर खिसक कर आ खड़ा हुआ। 'दो पान और एक पैकेट पासिंग शो! एक दियासलाई की उसने फरमाइश की।

पान वाले ने पैसे को फेंक कर और सामान लेकर वह हाल में जा बैठा। किसी फ़िल्म का गाना हो रहा था। उसने पान की पीक एक ओर थूक दी और पैकेट से एक सिगरेट निकाल कर जलाया।

५

लता की जब सुध बुध लौटी तो उसने देखा असीम बाहर जा रहा है। उसके पैर दरवाज़े की चौखट पार कर रहे हैं। वह चकित सी भ्रमित सी देखती रह गई असीम को। जब तक असीम उसकी आँखों से ओझल नहीं हो गया वह बराबर देखती रही उसे उद्विग्न की भांति जाते हुए। जी में एक बार आया कि असीम को बुलाये पर बुला न सकी उसकी जबान ही जैसे बँध सी गई यदि असीम ने फिर कर एक बार भी देखा होता तो वह लता की आंखों में आंसू अवश्य देख पाता पर उसने तो फिर देखा ही न। लता एक बार द्वार तक आई। असीम दूर पर सड़क की मोड़ के निकट हो गया था। सड़क की मोड़ पर एक ओर को मुड़ जाने के बाद

उसे अमर जब न दिखाई पड़ा तब वह लौट कर उसी चारपाई पर गिर कर खूब ही रोई। जैसे उसने कुछ खो दिया हो। वह रोती रहती न जाने कब तक-पर तुरन्त ही उसे ख्याल आया कि यदि कोई आ गया तो क्या कहेगा। इसलिये वह तुरन्त उठी और कमरे को बाहर से बन्द करके चाभी रामू को बुला कर दे दी और कह दिया जब असीम बाबू आयें चाभी उन्हें दे देना और वह स्वयं अन्दर चली गई।

अन्दर पहुँचते ही उसने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया और तकिये पर सिर रख कर जी भर रोई। रोते-रोते अंधेरा हो गया। रामू कमरे में अंधेरा देख कर द्वार पर ताला बन्द था उसे आश्चर्य हुआ कि आज द्वार भीतर से बन्द क्यों है उसने पुकारा बीबी जी।

लता ने सुना आँसू पोंछ डाले उठना चाहा पर उठ न सकी जैसे कोई शक्ति उसे बार बार न उठने के लिये बाध्य कर रही थी।

रामू ने फिर पुकारा—खोलो बीबी जी।

इस बार लता को उत्तर देना ही पड़ा। उसने कहा—रामू मेरी तबियत ठीक नहीं है पड़ी रहने दो।

रामू को जान पड़ा जैसे लता का गला भरा हुआ है। वह व्याकुल सा हो गया है आखिर बिटिया को हो क्या गया है अभी अच्छी खासी तो शाम को पढ़ती थीं और इतनी ही देर में कितनी तबियत खराब हो गई। उसने कहा—खोलो तो क्या बात है।

लता रामू की आदत से परिचित है। उसे दरवाजा खोलना ही पड़ा। दरवाजा खोल कर वह चारपाई पर जा पड़ी रामू ने बिजली जलाई और सिरहाने बैठ कर पूछा क्या है बीबी जी, क्या तबियत खराब है।

कहते हैं सहानुभूति करने वाला पा कर हृदय का दुःख और भी उमड़ आता है। लता की आँखों से आँसू बह चले। रामू ने ध्यान से देखा लता के चेहरे की ओर और बोला—अरे तुम मालूम होता है बड़ी देर से रो रहीं थीं आखें सूज आई हैं।

लता ने कुछ उत्तर न दिया तकिये में सिर छिपा कर रोती रही।

कुछ देर तक रामू चुप रहा फिर बोला—आखिर बताओ बात क्या है सिर दर्द कर रहा है।

लता ने केवल सिर हिला कर हां कर दी। रामू बोला—अभी तक बताया नहीं सिर लिये कब से पड़ी रहीं। बराबर कहता आता हूँ कि बिटिया बहुत देर तक न पढ़ा करो। अपनी तनदुरुस्ती का ध्यान पहले रखो और सब पीछे। पढ़ना तो हो हीं जायगा पर तनदुरुस्ती गई तो गई फिर वापस आने की नहीं लेकिन तुम जब सुनो भी तब तो। तुम्हें तो पढ़ना हीं पढ़ना सूझता है।

लता ने कुछ उत्तर न दिया। रामू और भी कुछ बड़बड़ाता रहता पर लता ने कहा—मेरी तबियत ठीक नहीं है चिल्लाओ न।

रामू चुप हो गया। जा कर तेल लाया और लता के सिर में लगाने लगा। आज लता को एक अजीब सा अनुभव रामू के तेल लगाने में हो रहा था। रामू ने अनेक बार लता के सिर में तेल लगाया है अनेक बार उसने प्रेम के साथ उसके मस्तक पर हाथ फेरा है परन्तु कभी भी उसे ऐसा अनुभव नहीं हुआ। आज उसकी इच्छायें जागृति हो गई थी। किसी भी पुरुष के स्पर्श से उसे एक अजीब सी गुदगुदी अजीब से सुख का अनुभव हो रहा था।

वह अमर के सम्बन्ध में सोच ही रही थी। लेकिन जितना ही वह सोचती उतना ही वह गूढ़ पहेली सा प्रतीत होता। लता ने जिस क्षण से अमर को देखा था उसी क्षण से उसकी ओर आकर्षित हुई थी परन्तु अमर को कभी भी उसने अपनी ओर ध्यान से देखते न देखा उस दिन जब सहसा अमर की उससे आंखे चार हो गईं तो उसे एक लोकोत्तर आनन्द सी अनुभूति हुई और बहुत चाहते हुए भी अपनी आंखों को नीचे न झुका सकी। चाहती थी अमर ऐसे ही उसे सदैव देखता रहे और सचमुच अमर जाने कितनी देर तक उसे उसी प्रकार ठगा सा, भूला सा देखता रहा था। लता की उँगलियां मेज पर रखी किताब से खेल कर रही थी उसने देखा अमर का हाथ भी मेज पर है और न जाने कौन प्रेरणा उसके हृदय में हुई कि वह बराबर अपना हाथ बढ़ाती गई लेकिन बहुत ही धीरे-धीरे। अन्त में उसे अमर की गर्म हथेली का स्पर्श अनुभव हुआ वह चाहती थी उन

उँगलियों को खूब ज़ोर से अपनी उँगलियों में फँसा पर वह ऐसा न कर सकी। जी चाहता था वह अमर को अपनी छाती से लगा कर खूब जोर से दबा ले। उसकी छोटी छोटी उठी हुई छातियाँ कठोर होती जा रही थी, दिल में एक बेचैनी सी सवार होती जा रही थी वह अपने को खो चुकी थी और यदि क्षण भर अमर उसी स्थिति में और बैठा रहता तो लता उससे उसी प्रकार चिपक जाती जैसे किसी वृक्ष से लता चिपक जाती है।

उस समय क्या अमर इतना निर्मोही हो सकता कि वह उसे छोड़ कर चला जाता नहीं कदापि नहीं अवश्य ही उसके अधर चुम्बन करने को आतुर हो उठते। तो क्या उसने भूल की क्या उसे अमर की बाहुओं में अपने को सौंप देना था। स्त्री सुलभ लज्जा उसकी जागृति हो उठी। नहीं ऐसा कैसा सम्भव है अरे वह भी समझता कितनी बेहया यह लड़की है पर वह कैसे समझे कि प्रेम की पीड़ा कैसी होती है। दिल का दर्द कितना दुःखदायी होता है। यही तो अमर ने अभी तक नहीं समझा कहता है कहानी अनुभूति की वस्तु है पर उसे ही क्या अनुभूति है? सभी कहानियां तो उसकी प्रेम की है लेकिन प्रेम की अनुभूति क्या उसे है? कोई भावुकता के बल पर ही संसार को तैरना जाना चाहता है।

लता सोचती आखिर वह चला क्यों गया क्यों उठ कर चला गया। क्या मैंने कोई अनुचित कार्य किया था। यदि उसे यह नहीं पसन्द था तो उसने फिर मेरी ओर उस प्रकार देखा ही क्यों था पुरुष कितने छलियां होते हैं। लीला उस दिन ठीक ही कहती थी कि पुरुष का प्रेम पानी की धारा है जिधर ढाल पाता है उधर ही बह जाता है। बेचारी लीला को ही देखो, उस अभागे युवक को कितना प्यार करती है अपना मतलब हलकर के वह इसे ठुकरा कर चला भी गया पर आज भी उसकी याद लिये वह रोया करता है। वैसा ही है अमर निर्मम, निर्दय!

लता को जान पड़ा जैसे उसने कोई अनुचित बात कह दी हो। अमर निर्दय निर्मम! नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उसका हृदय कोमल है। वह प्रेम को ठुकरा सकता ही नहीं। सहसा उसे ध्यान

आया। रामू की उँगलियां अब भी उसके बालों में चल रही थी उसने पूंछा—रामू अमर बाबू को चाभी दे दिया।

'अभी आये कहां।'

'अभी नहीं आये।'

'नहीं।'

लता चुप हो गई। 'नहीं' आये। आखिर कहां चले गए ? क्या वे मुझ से रुठ गए। अब न आयेंगे। नहीं यह नहीं हो सकता। कहीं चले गए होंगे आवेंगे अवश्य।

लता ने सोचा शायद मुझसे नाराज हो गए हो। इसलिए उसने कहा—रामू जाओ अब मेरा सिर ठीक है। अब मुझे सोने दो।

रामू कुछ न बोला उठ कर चला गया लता ने कमरा बन्द कर लिया उठी और सोचा अमर को एक पत्र लिखे। फाउंटेनपेन और लेटर पैड उठाया, लिखा—

मेरे प्राणेश्वर !

आगे उससे कुछ लिखा न गया। सोच कर भी कुछ न लिख सकी काग़ज़ क़लम उसी प्रकार पड़ी रहने दे कर वह चारपाई पर लेट गई। फिर वहीं विचार उसे परेशान करने लगा।

६

जीवन में कभी कभी ऐसी घटनायें हो जाती है जिन की मनुष्य कभी आशा भी नहीं करता और जब वेही घटनाएं हो जाती है तब वह आश्चर्य करता है अपने ऊपर। अमर जब दूसरे दिन घर लौटा तब उसने देखा कि उसके कमरे में ताला बंद है। उसका साहस न हुआ कि वह लता को बुलाकर चाभी मांगता दरवाजे पर वह कुछ क्षण टहलता रहा इसी बीच में रामू आ गया। आते ही उसने कहा—बाबू साहब आप कहां रहे कल सारी रात मैं आप की प्रतीक्षा में सारी रात बाहर इसी चबूतरे पर सोता रहा। सोचा जाने कब आप आये तब आप को चाभी की आवश्यकता पड़ेगी।

अमर जैसे सोते से जग सा उठा बोला—हां, कल मैं चला गया

था एक जगह काम से फिर रात वापस न आ सका। तुम्हें बड़ी तक-लीफ हुई।

'नहीं साहब तकलीफ की क्या बात थी। जैसे भीतर पड़े रहना वैसे यहां। हां, कल बिटिया रानी की तबियत खराब थी इसलिए मुझे चाहिए था की उनकी देख रेख करता पर उन्होंने ही कहा कि अमर बाबू को तकलीफ होगी। तुम बाहर ही रहो जब आयें तब उन्हें चाभी दे देना।

अमर ने सुना उसे आश्चर्य हुआ बिटिया रानी की तबियत अच्छी नहीं थी। आखिर उन्हें हो क्या गया था। कहानियों में मनोविज्ञान की सफल विवेचना करने वाला अमर इस साधारण सी बात को भी न समझ सका। उसने पूछा—क्या तबियत खराब हो गई थी।

तबियत क्या खराब हो गई थी रामू ने उत्तर दिया। आप तो देखते ही हैं कि उसके शरीर में कुछ है नहीं और उस पर पढ़ाई की यह मेहनत क्या बताऊं मैंने तो लाख समझाया इतनी मेहनत न करो। इम्तहान में पास होना ही तो सब कुछ है नहीं। पर जब वे मेहनत करने से माने तब तो अब कल ही देखिये स्कूल से आते ही आप के पास पढ़ने बैठ गईं। यहीं से पढ़ कर गईं तो कहने लगी सर में दर्द है। कमरा बंद करके लेट रहीं। बड़ी मुश्किल से तो मैंने जब बहुत पूंछा तब बताया और तब कहीं फिर मैंने सर में तेल लगाया।

'हूँ' अमर ने छोटा सा उत्तर दिया।

'हां' बाबू और फिर मैंने रात में देखा कि कमरे में रोशनी जल रही थी जरूर कुछ लिख पढ़ रही होंगी।

'अब कैसी तबियत है।'

'अब तो ठीक है सुबह उठी हैं तो मुझसे आपके बारे में पूंछा। मैंने कहा आप तो नहीं आये तब मुझसे चाभी लेकर आपके कमरे में गई और बंद करके कुछ अपना पढ़ती लिखती रही फिर स्कूल जाने के समय कमरा बंद करके चाभी मुझे देकर चली गईं।

'अच्छा, तो स्कूल गई क्या ?'

जी हाँ, उनका स्कूल जाना भला छूट सकता है।

अमर ने कोई उत्तर न दिया चाभी लेकर दरवाजा खोला। कमरे

में पैर रखते ही उसे ऐसा जान पड़ा जैसे कमरे का किसी ने कायाकल्प किया हो। तमाम कमरे में एक जीवन सा पड़ गया प्रतीत होता था। अमर स्वभाव से लापरवाह है उसे अपने सामान की हिफाजत करना न तो कभी आया है और न आ ही सकता है। कभी उसने अपना समान ठीक से नहीं रखा। कमरे में सारा सामान सदा इधर उधर पड़ा रहता था। एक कोने में अखबारों की दुनिया दूसरे कोने में कपड़े इधर उधर बिखरे रहते बिस्तरा शायद उसका एक बार बिछ जाने के बाद दुबारा तभी बिछता जब धोबी कपड़े ले जाता अमर को अपने तन बदन की ही परवाह न रहती फिर और वस्तुओं की कौन कहे। जीवन में यदि उसने किसी वस्तु को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया था तो वह भी उसकी रचनाये। उनपर उसे एक पिता का सा स्नेह था किसी पत्र में जब उसकी कहानी प्रकाशित हो जाती तो वह उसे काटकर एक फाइल में रख देता। उसके पास यही एक फाइल थी जिसकी हिफाजत वह अपनी जान से ज्यादा करता था।

पर आज जब उसने कमरे में प्रवेश किया तब उसने देखा सारे कमरे की हालत ही बदली है सभी चीजें एक करीने से सजाकर रखी गई है। कहीं भी कोई त्रुटि नहीं है। कमरा झाड़-बटोर कर साफ किया गया है। सारी किताबें और मासिक पत्रों को एक कायदे से आल्मारी में सजा दिया गया है। दीवल पर एक कागज लगाकर कपड़े टांगे गये हैं विस्तर पर साफ सुथरे तरीके से विछा हुआ है। अमर को आश्चर्य हुआ यह किसका काम है। सोचा हो सकता है लता ने यह सब किया हो पर क्या लता सी ही कोमल लता इतना परिश्रम कर सकती है। आश्चर्य हो रहा था। नारी विश्वास सृजन शील है यह उसने सदैव ही विश्वास किया था पर उसे विश्वास न होता था कि लता उसके लिये—उसे उसका कोई नहीं है—इतना कष्ट सहन करेगी। फिर सोचा हो सकता है उसने रामू से कह दिया हो और यह उसी का काम हो पर दूसरे ही क्षण ध्यान आया। रामू ने तो कहा था कि लता ने उससे सुबह ही चाभी लेली थी। हो न हो यह लता का ही काम है।

अमर के लिये लता एक समस्या हो रही थी। लता को जितना

ही समझने का वह प्रयत्न करता उतनी ही वह जटिल होती जाती थी।

सोचता हुआ वह कुर्सी पर आकर बैठ गया!

कितनी सुन्दर यह मेज है। एक साफ सा मेज पोश उस पर बिछा है उसका तो यह मेज़ पोश है नहीं अमर सोचने लगा क्या लता ने यह मेज पोश अपना यहां डालदिया है। यदि यह बात है तो कदापि ठीक नहीं। वह किसी का उपकार सहन करने की शक्ति नहीं रखता। वह उसे लौटा देगा इस मेज पोश को तुरन्त। एक बार इच्छा हुई मेज पोश को उठा कर रामू को दे दे पर फिर जाने क्या सोच कर उसने ऐसा नहीं किया!

मेज पर उसका लेटर पैड पड़ा था। उसने उठा लिया योंही कोई काम नहीं था पर उसे उलटने पलटने लगा। सहासा एक स्थान पर वह खुल गया देखा तो सारे मेज पर कुछ लिखा दिखाई पड़ा। पढ़ा। अमर! अमर! सारे मेज पर यही लिखा था। लता की लिखावट है इस में उसे संदेह नहीं। वह लता की लिखावट को अच्छी तरह से पहचानता है। वह भूल नहीं कर रहा है।

'क्या लता के मस्तिष्क में और कुछ है ही नहीं। मेरा ही नाम तमाम मेज पर लिख डाला। नारी कितनी बड़ी पहेली है।

उसे ऐसा जान पड़ा मानो वह अपने उद्देश्य से अपने जीवन के निश्चय से नीचे गिर रहा हो पर दूसरे ही क्षण वह संभल गया। नारी जाति के प्रति उसका अविश्वास फिर उमड़ आया। नहीं वह इस प्रकार भावुकता का शिकार न होगा उसने पक्का निश्चय कर लिया। पर क्या वह अपने निश्चय पर अटल रह सकेगा वह स्वयं निश्चय नहीं कर सका।

सारा दिन अमर सोचता ही रहा। उसने कितनी ही बार नारी की आवश्यकता पर विचार किया। क्या उसके अव्यस्थित जीवन का अन्त करने के लिये नारी की आवश्यकता है। काश! एक नारी सदैव ही उसकी इस छोटी गृहस्थी का सृजन कर सकने के लिये! वह आगे सोच न सका। आकाश कुसुम की बात वह सोच रहा था।

वह जानता था कि लता उसकी प्राप्ति के बाहर की वस्तु है फिर वह व्यर्थ प्रयत्न क्यों करे।

लता के आने का समय हो गया पर अमर इसी उधेड़ बुन में पड़ा रहा। सहसा तांगे की आवाज सुनाई पड़ी किसी अज्ञात शक्ति के खिंचाव से वह बाहर की ओर देखने के लिये द्वार पर आ खड़ा हुआ। लता तांगे से उतरी अमर पर मुस्कराती हुई एक दृष्टि डाली और अन्दर चली गई। अमर पराजित की भांति आकर धम से चारपाई पर गिर पड़ा।

७

तीन महीने पश्चात् जून की एक सुबह थी!

ठंडी ठंडी बयार डोलकर प्रकृति के बिखरे यौवन में उन्माद भर रही है। उषा के मुख पर प्रातसमीरण ने लाली मल दी थी। वह लजाई सी नववधू की भांति एक ओर सिमट कर जाने का प्रयत्न कर रही थी। आसमान साफ़ था। सूरज की पतली किरणें निकल कर सूखे खेती पर बिखर रही थी। कल-कल करती हुई वह पहाड़ी नदी बह रही थी। नदी के किनारे ही एक पीपल का वृक्ष एकान्त प्रहरी-सा खड़ा था। सरिता की लोल लहरियां आकर कूल से टकरा रही थीं। दूर पर कोई गा रहा था। लता और दिवाकर तट पर बैठे हुए थे। लता अपनी कोमल उंगलियों से सिकता में कुछ लिख रही थी, शायद कोई चित्र बना रही थी। ऐसा मतवाला प्रातःकाल शायद ही कभी देखने को मिला हो।

कहते हैं एकान्त पाप की सृष्टि करता है। दिवाकर लता की ओर एकटक देख रहा था। उसके हृदय में आज एक अजीब भावों की सृजना हो रही है। यौवन में प्रमाद होता है और उस प्रमाद में प्रेम करने की उत्कृष्ट अभिलाषा। पुरुष अपने प्रेम को केन्द्रित करने के लिए कोई स्थान खोजता है। दिवाकर विवाहित है। उसकी स्त्री है परन्तु उसे संतोष नहीं। वह अपने प्रेम को लाख प्रयत्न करने पर भी अपनी स्त्री पर केन्द्रित न कर सका। यही उसकी असफलता थी। आज तक लता

को उसने दूसरी दृष्टि से देखा था पर आज एकान्त में बैठकर उसने लता के सौन्दर्य का पान किया। उसकी लुप्त भावनायें जग उठीं। एक बार उसने सोचा यह पाप है किसी कुमारी को इस प्रकार देखना—खास कर जिसे अब तक मैंने बहिन का सा बर्ताव किया है पाप है, महान घातक है उसने दृष्टि फिराकर पानी पर डाली।

छोटी-छोटी लहरियां दौड़ कर कूल का आलिंगन कर रही थी परन्तु कूल की ठोकर लगते ही उनका अस्तित्व विलीन हो जाता। दिवाकर ने एक सर्द आह भरी सोचा क्या अपना जीवन भी इसी प्रकार है आलिंगन के सुख में ही क्या अस्तित्व का विनाश छिपा हुआ है। क्या प्रेम का अन्त इसी प्रकार होता है। दूर से दौड़ती हुई एक लहर किनारे की ओर आ रही थी दिवाकर ने पास पड़े हुए ढेले को उठाकर उस पर फेंक दिया। अवरोध पाकर वह अनन्त लहरियों में बंट कर कूल को चूमने के लिये दौड़ पड़ीं। दिवाकर हंस पड़ा।

लता ने अपनी धोती झाड़ते हुए कहा—अरे, तुमने तो मेरा कपड़ा ही भिगो दिया।

दिवाकर ने देखा लता की धोती पर दो चार बूंदें पड़ कर बिखर गई हैं। वह गम्भीर हो गया बोला - लता मैंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। इन लहरों को देखकर मेरे जी में कुछ भाव उठे और मैंने इसीलिये ढेला फेंक दिया।

'क्या भाव उठे ?' लता ने जिज्ञासा पूर्वक पूंछा।

'लता इन लहरों को देखो कितनी दूर से ये दौड़ कर तट का आलिंगन करने को आती है और कूल के चरणों पर अपना अस्तित्व बिखेर देती है। क्या हमारा जीवन भी ऐसा हां नहीं। क्या हम भी जिसे प्रेम करते हैं उसके चरणों पर अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिये नहीं दौड़ते और क्या उसके प्रिय के चरणों पर अपने सर्वस्व का अस्तित्व मिट नहीं जाता। मैंने दूर से आती हुई एक लहर पर एक ढेला फेंका था ताकि वह तट की ओर न आ सके पर अवरोध होते ही वह अनन्त लहरों में बंट कर तट को चूमने लगी। यही सोचता हूँ कितना सत्य है इन छोटी लहरों के इस छोटे से जीवन

में। प्रेम अवरोध पाकर और बढ़ता है इसी की तो ये शिक्षा देती हैं।

'अच्छा तो आप दार्शनिक हो गए' लता ने मुस्कराते हुए कहा।

'दार्शनिक नहीं लता ! हमारे जीवन में कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं जब हम विचार करने को मजबूर होते हैं। ऐसा ही क्षण है।'

लता ने कुछ उत्तर न दिया।

क्षण भर चुप रहकर दिवाकर ने फिर कहा—लता देखो कितना सत्य है जिसे प्रेम करो, जिस पर अपना सर्वस्व बलिदान करो वह कूल की भांति ही तो अटल रह कर अपने प्रेमी का अवसान देखता है।

दिवाकर ने प्रश्न सूचक दृष्टि से लता की ओर देखा। लता गम्भीर हो गई थी बोली—तुम दिवू, एक ही पहलू देख रहे हो कभी कूल की ओर भी विचार किया है।

विचार किया है पर देखा वह प्रस्तर खण्डों से निर्मित है, चाहे वे प्रस्तर खण्ड बालू के कण ही क्यों न हो गए हैं पर उसमें प्रस्तर के वे सभी गुण अभी विद्यमान है।

'नहीं, यही तो तुम्हारी भूल है। तट के बंधन पर गौर करो देखो उसे संसार का बंधन है उस बंधन में रह कर वह लाख इच्छा होते हुए भी अपने प्रेमी लहरों के साथ बह जाने में असमर्थ है। परन्तु क्या तुम नहीं देखते हर लहर के साथ वह अपने कलेजे को अव्यक्त रूप से कट जाने देता है। मर मिटने में उतना त्याग नहीं जितना इस प्रकार तिल तिल भर कट कट कर मरने में।

दिवाकर गम्भीर हो गया। उसे ऐसा ज्ञात हुआ पर जैसे उसने अभी तक लता को पहचानने में भूल की है। लता की आखों से अपनी आखे डाल कर उसने पूंछा—तो ?

'तो क्या ? तुम पुरुष हो इसलिये तुम्हें केवल अपना ही पहलू तो सोचना आता है। तुम अपनी दृष्टि से अपनी बात का विचार करते हो दूसरे की परिस्थित पर विचार करना जैसे तुम्हारा फर्ज ही नहीं है।'

तुम्हारी बात लता ठीक मालूम होती है परन्तु।

'परन्तु क्या— ?'

'जीवन का अनुभव मुझे इस के विपरीत ही सोचने के लिये विवश करता है।'

'तुम्हारा अनुभव यह कैसे मान लिया जाय कि दूषित नहीं। जो अमिट सत्य है उसे दूषित अनुभव द्वारा दूषित बनाने से तो कुछ होता नहीं।'

दिवाकर निरुत्तर सा हो गया, बोला—लता मेरी अपनी एक कसौटी है। हर चीज को मैं उसी कसौटी पर जांचता हूँ। मैंने जिसे भी प्यार किया उसी की ओर से उपेक्षा मिली। तो मैं कैसे तुम्हारे तर्क को मान लूं।

'उपेक्षा और प्यार दोनों एक ही वस्तु के दोपहलू हैं।'

लता ने कहने को तो यह कह दिया पर उसका चेहरा आरक्त हो गया। विचार शृङ्खला को बदलने के लिये वह मुट्ठी में बालू लेकर खेलने लगी। परन्तु अपने बिचारों को वह न रोक सकी वह सोच रही थी जो कुछ उसने कहा उन पर तो उसे स्वयं भी विश्वास नहीं है उसने अमर को प्यार किया पर उससे उसे सिवा उपेक्षा के और क्या मिला! प्रेम के लिये यौवन भूखा होता है। पर वह लैला मजनू का प्रेम लेकर मरना नहीं चाहता। लता चाहती थी प्रेम पूर्ण जीवन प्रेम में उसे पाप की कहीं भी कोई कालिमा न दिखाई पड़ती थी। वह अमर को चाहती थी पर उस दिन की घटना के बाद अमर कटा कटा सा कुछ सचेत और कुछ फीका सा बना रहता। लता के लिये कुछ कहने से कभी भी इनकार न किया था पर फिर भी कभी उसने लता को आगे बढ़ने का अवसर न दिया था। रोज लता उससे पढ़ने जाती। वह घंटों बैठ कर लता को पढ़ाता पर पहले सा अपने को भूला सा नहीं।

कई बार लता ने उसके हृदय की थाह लेने की कोशिश की पर न ले सकी। वह जानती थी कि अमर उसे प्यार करता है पर फिर भी वह अमर को अपनी ओर खींचने में सफल न हो सकी। उसकी तबियत पढ़ने में न लगती परन्तु फिर भी अमर की प्रसन्नता के लिये वह बड़ी मेहनत करती और उसी मेहनत का यह परिणाम था कि वह पास भी हो गई। पर अमर की पहेली को वह न सुलझा सकी।

आखिर अमर इतनी उपेक्षा क्यों करता है; क्यों उससे दूर दूर रहता है। चलते समय उसने देखा था कि जब दिवाकर तांगा लेकर आया और उसका सामान तांगे पर रखा जाने लगा तभी वह जाने कहां चला गया। लता ने चलते चलते उसको खोजा पर व न मिला वह स्टेशन चली आई! स्टेशन पर जब गाड़ी पर वह बैठ गई और गाड़ी चलने लगी तब उसने देखा था कि दरवाजे पर सीकचों से हाथ टेके खड़ा कोई जाती हुई गाड़ी को देख रहा था अरे अमर था वह लता ने फिर भी न समझा उसे यह भी कोई प्रेम है कि जब तक पास रहे तब तक तो कटे कटे दूर दूर फिरते रहे और अब जाते समय यहां खड़े हैं; अरे, नहीं हो सकता है कोई कार्य वश आया हो वह अमर। अमर के प्रति उसका आकर्षण शारीरिक ही तो था इसलिये वह अधिक उपेक्षा न सहन की। नारी जब किसी गुत्थी को नहीं सुलझा पाती तब वह उसेकाट फेक देना ही चाहती है। उसने अमर को अपने जीवन में काट कर फेक दिया, उसे भूल जाने की कोशिश की।

उसकी विचार धारा चलती ही रहती परन्तु इसी समय उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने गरम-मरम हाथ में उसकी हथेली ले ली हो। लता ने कोई प्रतिवाद न किया। दिवाकर और निकट खिसक कर बैठ गया। लता ने अपनी आँखें न उठाई। उसे वह क्षण याद आगया जब अमर की उँगलियों से उसकी उँगलियाँ इसी प्रकार उलझ गई थी। उसे एक सुख का अनुभव हो रहा था। वह उसे नष्ट न होने देना चाहती थी। दिवाकर ने धीरे से उसकी हथेलियों को उठाकर चूम लिया।

लता को ऐसा जान पड़ा जैसे उसका शरीर निश्चेष्ट हो गया हो। वह अपने को संभालने का प्रयत्न कर रही थी पर न संभल सकी और दिवाकर की बाहुओं में गिर पड़ी। दिवाकर ने उसे अंक से लगा लिया। दोनों के अधर एक दूसरे से मिल गए। लता ने एक अजीब सुख का अनुभव किया। उसे ऐसा लग रहा था कि यदि वह सदैव इसी प्रकार दिवाकर की गोद में पड़ी रहे और दिवाकर के गर्म होठ उसके होठों से लगे रहे तो बड़ा अच्छा हो। परन्तु उसे परिस्थिति का

ध्यान आया। वह उठकर बैठ गई। दिवाकर की ओर देखा। उसकी आँखों में नशा था, आत्मसमर्पण था। लता का हृदय पागल हो उठा वह चाहती थी कि दिवाकर को अपने अंक में भर लें पर ऐसा न कर सकती थी क्षण भर चुप रह कर उसने सरिता की ओर देखा। धूप की जर्दी पानी पर बिखर,गई थी लता ने दिवाकर की ओर लक्ष्य करके कहा चलो देर होगी।

'चलो !' दिवाकर ने अनिच्छा पूर्वक कहा।

लता खड़ी हो गई। दिवाकर भी उठा पर उसका शरीर जैसे बेकाम सा हो रहा था; उसने लता का हाथ पकड़ लिया। लता की मतवाली आँखें उस पर बिखर गई।

दिवाकर ने कहा—रानी, आज का सा सुख मुझे सम्पूर्ण जीवन में नहीं मिला।

लता ने उसकी ओर देखकर मुस्करा भर दिया।

'रानी' दिवाकर ने फिर कहा !

'क्या ?' लता ने धीरे से उत्तर दिया।

दिवाकर के पास जैसे कुछ कहने को नहीं था उसने लता को अपनी ओर खींचते हुए कहा—प्राण ! तुम मुझे प्रेम करती हो।

लता ने कोई उत्तर न दिया। दिवाकर ने झुककर उसका मुख चूम लिया। गाल आरक्त हो गए।

'हटो कोई देख लेगा तुम—' वह कुछ अधिक न कह सकी।

'तो बताओ तुम मुझे कितना प्रेम करती हो।' दिवाकर उसे फिर अपनी ओर खींचते हुए कहा।

'मैं नहीं जानती जाओ' और फिर तनिक खिसक कर बोली—ठीक से चलो लोग आ-जा रहे हैं।

दिवाकर ने कोई उत्तर न दिया।

८

मोतीलाल अपने कमरे में बैठा कोई मासिक पत्र पढ़ रहा था उसी समय अमर ने कमरे में प्रवेश किया। मोतीलाल ने अपने हाथ मासिक

पत्र मेज़ पर रखते हुए कहा आओ भाई अमर तुम खूब आये ! सच कहता हूँ मैं तुमको ही याद कर रहा था।

'धन्यवाद ! कहिए क्या आज्ञा है ?' कहते हुए अमर सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया।

'अरे कुछ नहीं।' काम क्या है। तुम जानते ही हो मेरे और काम ही क्या है। आज कल खाली ही तो बैठा रहता हूँ। अभी यह पत्रिका पढ़ने लगा।'

'हाँ ! यह तो मैं देख ही रहा हूँ।'

'तुम्हारी कहानी मैंने उसमें पढ़ी। भई गजब की कहानी है। सच कहता हूँ मुझे तुम्हारी कहानी में सबसे अधिक पसन्द यही कहानी मालूम हुई है।'

'अर्थात मेरी अन्य कहानियाँ आपकी नजर में कुछ भी नहीं हैं !' अमर ने मुस्कराते हुए कहा।

'अरे वाह। यह क्या कहते हो। मैं तो तुम्हारी कहानियों का भारी प्रशंसक हूँ। मुझे तुम्हारीं सभी कहानीं बहुत ही अच्छी लगती है। पर यह कहानी तो सबसे नम्बर मार ले गई।'

'खैर धन्यवाद है।'

लेकिन भाई अमर यदि तुम बुरा न मानो तो तुम से एक बात पूछूं ?'

'हाँ, हाँ, पूछिये बुरा मानने की क्या बात है ?'

'लेकिन पहले यह प्रतिज्ञा करो कि तुम मुझे बतला दोगे। छिपाओगे नहीं।'

'मोती तुम जानते हो मेरे जीवन में कोई ऐसी बात कहीं भी नहीं है जो मैं संसार से छिपा कर रखना चाहूँ। और यदि होती भी तो मैं उसे छिपा कर न रख सकता फिर तुमसे तो छिपाने की कोई बात ही नहीं हो सकती।'

'पर जो मैं पूंछना चाहता हूँ वह शायद तुम बताना न चाहोगे ?'

'यदि तुम्हें यह संदेह है तो मत पूछो मैं तुमसे आग्रह भी नहीं करता।' अमर ने खिन्न भाव से उत्तर दिया।

'अरे, नहीं यह बात नहीं है मुझे तुम पर पूरा विस्वास है मैं

जानता हूँ कि तुम मुझसे कुछ न छिपाओगे। पर तुम व्यर्थ में ही नाखुश हो गए।'

'नाखुश! और मैं! मोती तुमने मुझे समझने में सदाही गलती की है।

'नहीं, नहीं मेरा यह आशय नहीं है। मैंने तो यह सब योंही कह दिया था।'

'खैर, हटाओ भी। पूछो तुम्हें क्या पूछना है।' अमर ने मुस्कराते हुए कहा।

'अच्छा बताओ, तुम्हारी यह कहानी मैंने पढ़ी जिस घटना का तुमने इतनी सफलता से चित्रण किया है वह तुमसे आशा नहीं की जाती। तुम्हें प्रेम का इस प्रकार का अनुभव कहां से हो गया।'

'अमर जी खोलकर हंसते हुए बोला—बस यही पूछने के लिये तुम इतनी देर से भूमिका बांध रहे थे।

मोतीलाल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—नहीं मैं यह पूछना चाहता हूँ कि तुमने क्या किसी लड़की से प्रेम कर रखा है।

'प्रेम और लड़की से? मेरे जीवन में मोती! तुम ऐसी बात कभी भी न पाओगे। मुझे नारी से घृणा है। मैं उसे विश्वास घात की छलना की, प्रपंचना की देवी समझता हूँ।' अमर ने आवेश से उत्तर दिया।

'नादान लड़के! तुम नहीं जानते कि तुम क्या कह रहे। नारी विश्वास घातनी नहीं प्रेम की देवी होती है।

'प्रेम की देवी!' अमर की आकृति गम्भीर हो गई। 'तुमने मोती अभी नारी प्रकृतिका अनुभव कम किया है। तुमने अभी उसका एक ही पहलू देखा है। सायद दूसरा देखने की तुमने न तो परवाह की और न तुम्हें अवसर ही आया 'मैं तुम्हारे उस दूसरे पहलू को देखना भी नहीं चाहता। मैंने जीवन में अनेक स्त्रियों से प्रेम किया। तुम अपने हो मेरा सम्पूर्ण जीवन तुम्हारे सामने खुला रहा है तुम से छिपाता नहीं तुम जानते हो कि कालिज से अब तक के जीवन में मैंने अनेक स्त्रियों से प्रेम किया पर कभी भी मुझे उसकी विश्वास घातनी प्रकृति से हानि नहीं हुई।'

'हो कैसे ? जिसे तुम प्रेम कहते हो वह प्रेम नहीं वह तो वासना ही है। कोरी वासना इस में तो विश्वासघात का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरी बात एक और भी है तुम धनी हो तुम्हारे पास अथाह सम्पत्ति है तुम ऐश्वर्य से रह सकते हो और स्त्री ऐश्वर्य चाहती है सुख चाहती है जहां उसे यह मिलता है वहीं जाती है।'

'तुमने अपने अधूरे ज्ञान के भरोसे पर ही सदैव स्त्रियों के चरित्र को इसी प्रकार का अपने कहानियों में वर्णन किया है पर मैं तुम से कहता कि तुमने अभी अनुभव नहीं किया।'

'अनुभव नहीं किया ! मोती तुम जब यह कहते हो तो मुझे खेद होता है। तुम जानते हो कि मैंने अनुभव किया है। और कटु अनुभव किया है। बटलोई का एक चावल देखा जाता है न कि सब !'

'अच्छा तो तुम उस मामले को लेकर ही साहित्य में नारी के प्रति अविश्वास करने का प्रयत्न कर रहे हो।

'हां !'

'पर अमर सभी स्त्रियां ऐसी नहीं होती। तुमने अभी स्त्री को समझा नहीं मैं प्रार्थना करूंगा कि तुम अभी और भी समझने का प्रयत्न करो !'

'हो सकता है कि संसार की सभी स्त्रियां ऐसी नहीं पर मैंने नारी प्रकृति का अध्यन किया है उसके सामने प्रेम ऐसी कोई वस्तु नहीं वह तो रूप नीर वासना है। वासना के अतरिक्त और कुछ नहीं। वह प्रेम की ओट में वासना की पूर्ति चाहती है। उसे धन चाहिए आडम्बर चाहिए, उसकी सभी इच्छाओं की पूर्ति चाहिए जब तक कोई पुरुष इन सब की पूर्ति उसके लिये करता रहेगा तब तक उसका प्रेम भी बना रहेगा। जब तक उसकी स्वार्थ की सिद्धि होती रहेगी तब तक वह सब कुछ करने को तैयार रहेगी परन्तु जहां उसका स्वार्थ न रह गया फिर वह प्रेम करना भी नहीं जानती।'

अमर आवेश में था। कुर्सी पर से वह उठ खड़ा हुआ। और भी वह कुछ कहता जाता पर इसी समय मोती की पत्नी ने कमरे से प्रवेश किया और कहा—बहुत खूब वक्ताजी, आपने तो स्त्री की जी भर कर

निंदा कर डाली पर मैं आप का प्रतिवाद करने नहीं आई। घबड़ाइये नहीं।'

वह मुस्करा रही थी। मोती ने पूंछा—तुम कहां खड़ी सुन रहीं थी।

'आ रही थी आप से पूंछने कि खाना अभी खाओगे कि देर में। यदि देर में खाओ तो चाय बनवाऊं! इसी बीच में आप की स्पीच सुनाई पड़ी सोचा मेरे जाने से वक्तृता में भंग पड़ेगी इसलिये रुक गई।'

'भाभी' अमर ने मुस्कराते हुए कहा—लेकिन आप को हमारी बात इस प्रकार छुप कर तो न सुनना चाहिए।

'लेकिन मेरे देवर! तुम्हें इस प्रकार किसी के पति को भड़काना भी तो न चाहिए।

हंसी की ध्वनि से कमरा गूंज गया।

अमर ने उत्तर दिया—पर मैं इन्हें भड़का तो रहा नहीं था।

और क्या कर रहे थे आप महाशय! आप अपनी इस विचार-धारा को इनके मस्तिष्क में भर रहे थे ताकि ये मुझ पर अविश्वास करने लगे।' भाभी ने हँसते हुए उत्तर दिया।

'अरे वाह, तुम भी भाभी व्यर्थ का कलंक मुझ पर लगाती हो।'

'और जो तुम व्यर्थ का कलंक तमाम स्त्री जाति पर लगाते हो।'

'मेरा तो अपना विचार है।'

'मैं कहती हूँ तुम्हारा विचार गलत है। स्त्री का स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि वह जल्दी भुलावे में लाई जा सकती है। पर जहां प्रेम का प्रश्न आता है वहां वह मर मिटकर दिखा देती हैं।'

'होगा?' अमर ने लापरवाही से उत्तर दिया।

'होगा नहीं बाबू साहब! स्त्री को समझना सरल नहीं। वह आप लोगों की भांति गम्भीर नहीं कि जो मन में आया कह दिया।'

'आप तो रुष्ट हो रहीं हैं मुझ पर।'

'नहीं अमर तुम पर मैं क्यों रुष्ट हूँ। मैं तो तुम्हें अभी संसार से अनजान समझती हूँ। तुम अवस्था में मुझसे बड़े होगे पर अभी तुम्हारा अनुभव बिल्कुल ही अपरिपक्व है। जब तक तुम्हें नारी का

प्रेम प्राप्त नहीं होता तभी तक तुम इस प्रकार की बातें करते हो एक बार किसी स्त्री को प्रेम करने लगोगे तो सब बातें भूल जायेगी।

'तुमने तो कभी इसका प्रबन्ध भी न किया। अमर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

भाभी मुस्कराई बोली—प्रेम करने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता बाबू। उसके लिये दिल चाहिए। तुम्हारे दिल भी है, जो प्रेम करोगे।'

'चलिये यह दूसरा सार्टीफिकेट दिया आपने। अमर ने हंसते हुए कहा।

मोतीलाल अब तक तुम थे। अमर की बहस से उन्होंने भाग न लिया था। अब हंसते हुए बोले—भाई इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि स्त्री होती बड़ी कठोर हैं।

'चलिए-चलिए आप तो सब कुछ कह सकते हैं अमर बाबू का साथ पड़ा है न!'

अमर ने कोई उत्तर न दिया वह कमरे में इधर उधर टहल रहा था। भाभी की बात शायद उसने सुनी भी न थी। मोतीलाल ने उसे बुलाते हुए कहा--अमर बोलो खाना खाओगे या चाय पियोगे अभी।

'मैं कुछ भी न खाऊं पिऊंगा। अब चलूंगा देर होगी।'

'चलोगे?' भाभी ने आदेश के शब्दों में पूंछा। 'आखिर यदि इतनी जल्दी थी तो आये क्यों?'

'नहीं भाभी आज काम है फिर कभी आऊंगा।'

'फिर कभी तो आओगे ही पर मैं इस समय जाने जो नहीं दे सकती।'

'देर होगी।'

'देर होने दो खाना खाकर तब जाना।'

'खाना तो होटल में ही खाऊंगा नहीं तो वहां का तो चार्ज देना ही होगा।' अमर ने बहाना बनाते हुए उत्तर दिया।

'अजी बैठो भी औरतों के से नखरे करने लगे।'

अमर हंस पड़ा! भाभी ने फिर कहा—चलो बैठो—'बैठ जाता हूँ' पराजित की भांति अमर ने उत्तर दिया।

अमर के बैठ जाने पर भाभी ने पूंछा, बोलो—खाना भेजूं या चाय पियोगे अभी।

'चाहे जो भेजो ?' अमर ने उत्तर दिया।

'देखो यदि तुम्हें अभी भूख हो तो खाना भेज रही हूँ और यदि अभी भूख न हो कुछ ठहर कर खाना हो तो चाय भिजवाऊं !'

'मैं चाय पीकर चला जाऊंगा !' अमर ने उत्तर दिया।

'फिर वही बात ! मैं कहती हूँ बिना खाना खाये मैं तुम्हें न जाने दूंगी।'

'तो भाई तुम खाना ही खिलाओ।'

भाभी अन्दर चली गई। अमर कुर्सी पर से उठकर खिड़की के पास खड़ा हो गया। बाहर बाग में लगे हुए फूलों की सुगन्धि आ रही थीं। वह सोच रहा था यह नारी भी कितनी ममतामई है। तो क्या मैंने सचमुच नारी को समझने मे भूल की है। पर किसी को भी तो मैंने प्रेम करते नहीं देखा। जिसने भी मुझे प्रेम किया अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर। एक बार प्रेम करके ही मैंने धोखा खाया दूसरी बार लता ने मेरे जीवन में प्रवेश करना चाहा। पर आखिर में वह भी वैसी ही निकली जाते जाते इसमें कितने परिवर्तन हो गए थे। पहले कितनी व्याकुल सी रहती थी मेरे लिये बराबर पागल सी दिखाई पड़ती कितना मेरा ख्याल रखती पर जब—वह आगे न सोच सका उसे ज्ञात हुआ जैसे उसने कहीं पर कोई भूल की हो। उसने लता के प्रेम की उपेक्षा की थी। लता जितनी ही उसके निकट आने की कोशिश करती उतना ही वह दूर दूर रहने की कोशिश करता था तो क्या यह उसकी भूल न थी। आखिर वह कहां तक उसकी उपेक्षा सहती रहें। उसने स्वयं ही प्रेम को बढ़ने का अवसर नहीं दिया। और अन्त समय भी जब वह स्टेशन के फाटक के पास खड़ा था तब उसने देखा था कि लता खिड़की के बाहर सिर निकाले उदास बैठी है। जब उसने उसे देखा तब उसकी आंखे जैसे आनन्द से चमक उठी। वह जैसे चौक उठी। पर इसी बीच से डिब्बा उसकी आंखों से ओझल हो गया।

मोतीलाल के यहां खाना खाकर अमर रात में घर लौटा। मोती-

प्रेम प्राप्त नहीं होता तभी तक तुम इस प्रकार की बातें करते हो एक बार किसी स्त्री को प्रेम करने लगोगे तो सब बातें भूल जायेंगी।

'तुमने तो कभी इसका प्रबन्ध भी न किया। अमर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

भाभी मुस्कराई बोली—प्रेम करने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता बाबू। उसके लिये दिल चाहिए। तुम्हारे दिल भी है, जो प्रेम करोगे।'

'चलिये यह दूसरा सार्टीफिकेट दिया आपने। अमर ने हंसते हुए कहा।

मोतीलाल अब तक तुम थे। अमर की बहस से उन्होंने भाग न लिया था। अब हंसते हुए बोले—भाई इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि स्त्री होती बड़ी कठोर हैं।

'चलिए-चलिए आप तो सब कुछ कह सकते हैं अमर बाबू का साथ पड़ा है न!'

अमर ने कोई उत्तर न दिया वह कमरे में इधर उधर टहल रहा था। भाभी की बात शायद उसने सुनी भी न थी। मोतीलाल ने उसे बुलाते हुए कहा--अमर बोलो खाना खाओगे या चाय पियोगे अभी।

'मैं कुछ भी न खाऊं पिऊंगा। अब चलूंगा देर होगी।'

'चलोगे ?' भाभी ने आदेश के शब्दों में पूंछा। 'आखिर यदि इतनी जल्दी थी तो आये क्यों ?'

'नहीं भाभी आज काम है फिर कभी आऊंगा।'

'फिर कभी तो आओगे ही पर मैं इस समय जाने जो नहीं दे सकती।'

'देर होगी।'

'देर होने दो खाना खाकर तब जाना।'

'खाना तो होटल में ही खाऊंगा नहीं तो वहां का तो चार्ज देना ही होगा।' अमर ने बहाना बनाते हुए उत्तर दिया।

'अजी बैठो भी औरतों के से नखरे करने लगे।'

अमर हंस पड़ा! भाभी ने फिर कहा—चलो बैठो—'बैठ जाता हूँ' पराजित की भांति अमर ने उत्तर दिया।

अमर के बैठ जाने पर भाभी ने पूंछा, बोलो—खाना भेजूं या चाय पियोगे अभी।

'चाहे जो भेजो ?' अमर ने उत्तर दिया।

'देखो यदि तुम्हें अभी भूख हो तो खाना भेज रही हूँ और यदि अभी भूख न हो कुछ ठहर कर खाना हो तो चाय भिजवाऊं !'

'मैं चाय पीकर चला जाऊंगा !' अमर ने उत्तर दिया।

'फिर वही बात ! मैं कहती हूँ बिना खाना खाये मैं तुम्हें न जाने दूंगी।'

'तो भाई तुम खाना ही खिलाओ।'

भाभी अन्दर चली गई। अमर कुर्सी पर से उठकर खिड़की के पास खड़ा हो गया। बाहर बाग में लगे हुए फूलों की सुगन्धि आ रही थीं। वह सोच रहा था यह नारी भी कितनी ममतामई है। तो क्या मैंने सचमुच नारी को समझने मे भूल की है। पर किसी को भी तो मैंने प्रेम करते नहीं देखा। जिसने भी मुझे प्रेम किया अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर। एक बार प्रेम करके ही मैंने धोखा खाया दूसरी बार लता ने मेरे जीवन में प्रवेश करना चाहा। पर आखिर में वह भी वैसी ही निकली जाते जाते इसमें कितने परिवर्तन हो गए थे। पहले कितनी व्याकुल सी रहती थी मेरे लिये बराबर पागल सी दिखाई पड़ती कितना मेरा ख्याल रखती पर जब—वह आगे न सोच सका उसे ज्ञात हुआ जैसे उसने कहीं पर कोई भूल की हो। उसने लता के प्रेम की उपेक्षा की थी। लता जितनी ही उसके निकट आने की कोशिश करती उतना ही वह दूर दूर रहने की कोशिश करता था तो क्या यह उसकी भूल न थी। आखिर वह कहां तक उसकी उपेक्षा सहती रहें। उसने स्वयं ही प्रेम को बढ़ने का अवसर नहीं दिया। और अन्त समय भी जब वह स्टेशन के फाटक के पास खड़ा था तब उसने देखा था कि लता खिड़की के बाहर सिर निकाले उदास बैठी है। जब उसने उसे देखा तब उसकी आंखे जैसे आनन्द से चमक उठी। वह जैसे चौंक उठी। पर इसी बीच से डिब्बा उसकी आंखों से ओझल हो गया।

मोतीलाल के यहां खाना खाकर अमर रात में घर लौटा। मोती-

लाल अमर का पुराना मित्र है दोनों एक साथ पढ़े थे। बी० ए० के बाद अमर ने पढ़ना छोड़ दिया। मोतीलाल ने बहुत चाहा कि अमर पढ़े क्योंकि अमर से उसे बड़ी सहायता मिलती थी। मोतीलाल धनी बाप का बेटा तो था ही। अधिकांश समय घूमने खेलने तथा कालेज की लड़कियों के चक्कर में बिता देता और जब परीक्षा के दिन करीब आते तब वह अमर के पास आता और अमर भी कठिन परिश्रम करके उसे पास कराने का प्रयत्न करता। मोतीलाल ने वकालत पास किया था। वकालत उसकी चलती न थी पर पिता के मुकदमों में साथ रहता और मौज करता था। कालेज का साथ न छूट सका और अमर मोतीलाल के यहां बराबर जाता। मोतीलाल भी अमर की सहायता के लिये सदैव तैयार रहता। कितने ही बार उसने अमर को एम० ए० पढ़ने के लिये कहा, स्वयं खर्च देने का वादा किया पर अमर को जैसे जीवन से विरक्त सी हो गई थी वह पढ़ना चाहता ही न था। नौकरी करने का भी उसने प्रयत्न न किया। चारपाई पर पड़े पड़े वह सभी बातें सोचता रहा। कब उसे नींद आ गई इसका उसे पता न लगा।

९

दूसरे वर्ष जुलाई का महीना था।

उस दिन पानी बरस रहा था। रिमझिम-रिमझिम वर्षा की फुहार पड़ रही थी। आसमान में छितराये से कटे कटे से घूमने वाले बादल एक हो गए थे जैसे एक होना उनके लिये जरूरी था। इस आकाश रोदन में भी एक करुणा छिपी थी। अमर अपनी चारपाई पर लेटा हुआ खुले हुए दरवाजे से बाहर की ओर देख रहा था। बाहर की बरसात से एक बड़ी बरसात तो उसकी आंखों में छिपी हुई थी। इतने दिनों के बाद वह जो अनुभव कर सका था वह केवल इतना ही था कि जीवन के मिथ्या आडम्बर में मनुष्य प्रेम का आसरा लेकर चलता है परन्तु प्रेम कोई ऐसी वस्तु नहीं वह है कोरी भावुकता कितनी बार उसने कोशिश की वह इस क्षणिकमयी जगती में केवल छल द्वारा ही

आत्मतृप्ति करने का प्रयत्न करे पर वह ऐसा न कर सका चाहते हुए भी उससे ऐसा न हो सका! आखिर क्यों? उसका दिल कहता था चाहे प्रेमी हृदय एक दूसरे से अलग कर दिये जांय परन्तु प्रेम अलग नहीं हो सकता। यह तो ठीक है वह सोचता लेकिन जब प्रेम का कहीं नाम हो तब न और जब प्रेम ही नहीं तब फिर प्रेमी हृदय का अस्तित्व कैसा। आज वह कुछ फीका फीका सा अनुभव कर रहा था जैसे उसे जीवन में कोई रस न मिल रहा हो। नारी की छलना ने उसके हृदय में एक दुरभि संधि की सृष्टि कर दी थी। वह चाहता था यह सम्पूर्ण समाज खण्ड खण्ड करके तितर बितर कर दिया जाय। उसे समाज की सम्पूर्ण व्यवस्थता में अविश्वास सा होने लगा था।

उसके जीवन में कितने ही उथल पुथल हुए कितने ही ज्वार भाटे उसने देखे परन्तु सब में वह एक सा ही बना रहा। और विश्व-विद्यालय छोड़ने के बाद ये चंद वर्ष तो जाने उसके लिये संसार के कुछ खट्टे मीठे अनुभव ही लेकर आते थे। उसने सभी का आस्वादन किया परन्तु अन्त में हर एक ने चाहे वह खट्टा रहा हो या मीठा एक जलन ही दी। कभी कभी जब वह उन वर्षों की सुधि लेकर बैठ जाता है तब उसे ऐसा लगता है जैसे वह किसी अज्ञात निमति द्वारा उछाला जा रहा हो। आज कितने दिनों से उसने एकाकी, अनियमित तथा अव्यवस्थित सा जीवन व्यतीत किया है। पर इस जीवन से भी उसे संतोष नहीं उसे मोह नहीं। वह तो केवल यही चाहता है कि किसी जीवन के अवरोष क्षण बिता ने पर जब शान्ति पूर्वक बिताने पावे तब तो। एक न एक तस्वीर आकर उसके सामने खड़ी हो जाती है।

पिछले वर्ष पर वह पड़ा-पड़ा विचार कर रहा था। उस सम्पूर्ण ३६५ दिनों में एक तस्वीर है जो कभी रंगीन और कभी धुंधली होने का प्रयत्न करती है पर उसका संग नहीं छोड़ सकती ऐसा अमर को जान पड़ता है। भूलने की कोशिश करता है, उस तस्वीर पर स्मृति के काले रंग की कूची फेरना चाहता है पर नहीं फेर पाता और उन दिनों की तस्वीर में लता हंसती हुई सी आकर खड़ी हो जाती है।

उसने अपने जीवन में बहुत सी स्त्रियों को समझने की कोशिश

नहीं की। एक बार एक की मुस्कानों में उसने अपने को घुला मिला देने की कोशिश की थी। घुल मिल भी गया पर अन्त में उसे इस सब का उपहार क्या मिला निराशा और अविश्वास दूसरी बार दूसरी नारी ने—लता ने-- स्वयं अपने को उसके जीवन में घुलाने की कोशिश की तब उसे उसकी उपेक्षा करनी पड़ी क्योंकि वह अधिक पीड़ा लेने को तैयार नहीं। हो सकता है कि लता उतनी अविश्वासनी न निकलती पर अमर को तो नारी पर विश्वास नहीं। वह जानता है कि नारी कितनी सर्वजयी है। नारी में वह शक्ति है कि वह अपनी बात तो कह देती है पर दूसरे की बात सुनने के लिये उसके पास समय नहीं, अवसर नहीं, अवकाश नहीं। क्या लता ने भी यही नहीं किया? पर ओह कितनी रहस्यमयी है यह लता जिसे उसने समझने की कोशिश की और न समझ सका। यह उसकी ही अनुभवहीनता थी या और कुछ।

आज सुबह की गाड़ी से उसने सुना था कि लता आई है। उसने स्वयं देखा नहीं। हां, लड़के लल्लू ने आकर बताया था। कहा था लता के पिता नहीं आ सके थे। दिवाकर जाकर लाया है। यह दिवाकर आखिर लता का कौन है—कोई भी तो नहीं फिर हम पर इस तरह विश्वास क्यों किया जाता है इस बार अमर को खल रहा था। वह सोच ही रहा रहा था कि लल्लू उधर से गुजरा। अमर ने बुलाया। लड़का भीगे पांव अन्दर आकर बोला क्या है अमर दादा!

'अरे कहां गया था पानी में?'

'लता दीदी के लिये फांउटेनपेन की स्याही लेने कल स्कूल खुलेगा न?'

'तो रामू को भेज देता?'

'रामू! रामू तो इस बार आया ही नहीं। लता दीदी अकेली ही आई हैं।'

अमर ने कुछ उत्तर न दिया। क्षण भर खड़ा रह कर लड़का चला गया और अमर फिर अपनी ही पैदा की गई गुत्थियों से उलझ गया।

धीरे धीरे कर के शाम होने को आरही थी पर पानी का गिरना

बंद न हुआ। अमर भी जब पड़ा चारपाई पर तो पड़ा ही रहा। उठा भी नहीं। कई बार सोचा कि उठ कर कुछ लिखे पर लिखने का मूड जो उसका नहीं हो रहा था। पड़े पड़े ही उसे कुछ नींद सी आगई और वह सोने लगा।

तीन बजे के लगभग लता उसके कमरे के दरवाजे पर आई। दरवाजा बंद न था पर दरवाजे किसी ने भिड़ा दिये थे। लता ने चुपके से झांका देखा कि अमर चारपाई पर पड़ा सो रहा है। छोटी मेज़ उसकी चारपाई के पास है उस पर एक किताब अधि खुली सी पड़ी है। लता ने एक बार देखा चारो ओर कहीं कोई न था। घर की औरतें सभी अन्दर थी। बच्चे पानी के कारण कमरों में बंद से थे। एकान्त ने जैसे लता की वासना को फिर से एक फूंक मारी वह सुलग रही ही थी भभक उठी! उसने धीरे से संयत शब्दों में पुकारा—अमर!

अमर सोया न था ऐसे ही झपकी आगई थी आवाज़ सुनते ही जग गया। कौन बुलाता है यह वह न समझ सका पर इस समय वह किसी से मिलना चाहता था इसीलिये वह चुपचाप मौन धारण किये पड़ा रहा कुछ उत्तर न दिया। केवल एक बार बाहर की ओर देखने के लिये नज़र उठाई और फिर सिर तकिये पर रख लिए कौन हो सकता है वह सोचने लगा। मधुर सी आवाज मालूम होती थी। लता तो नहीं है उसे जैसे एक धक्का लगा। उसने फिर सोचा उंह हटाओ मुझसे क्या कोई भी हो। इस समय मैं किसी से मिलने के मूड से जो नहीं हूं।

लता दरवाजे की सूराख से देख रही थी। उसने देखा कि अमर ने सिर उठा कर द्वार की ओर देखा और फिर सिर रख लिया। उसने सोचा क्या इन की उपेक्षा अभी जारी है। क्या यह मुझसे घृणा ही करते रहेंगे। ठीक भी तो है मैंने भी इन्हें कौन अपने हृदय का सारा प्रेम देने का प्रयत्न किया जो ये मेरे लिये बेचैन रहते। दिवाकर का ध्यान उसे हो आया। सारी यात्रा उसने अकेले दिवाकर के साथ की थी। दिवाकर राह भर अपनी वासना पूर्ण आखें लता की आंखों में भरता आया था पर वासना के ऊपर भी एक चीज़ होती

है हृदय ! हृदय वह दिवाकर को न दे सकी हाँ शरीर की भूख मिटाने के लिये वह अवश्य ही उसकी ओर झुक गई थी।

कुछ खटका सा हुआ लता ने इधर उधर देखा कोई न था पानी जोर कर रहा था। उसने सोचा सम्भव है अमर ने सोचा हो कोई और ही। उसने फिर पुकारा—अमर !

इसबार अमर जैसे सब कुछ समझ गया जिस बात की उसे आशंका थी वही हुई। लता ही तो थी यह। पानी बरस रहा है इस लिये एकान्त है इसी लिये लता आई होगी। उसका हृदय घृणा से भर गया पर क्या करे ?

उठा, 'खुला है आइये' कह कर कमरे की छत की ओर देखने लगा।

लता ने कमरे में प्रवेश किया। दरवाजा फिर उसी प्रकार भिड़ा दिया। अमर यह सब देखता रहा पर बोला कुछ नहीं। विजयी की भांति वह मुस्कराती हुई उसने पूंछा—'कहिए कैसे रहे ?' और चारपाई के निकट ही मेज पर बैठ गई।

अमर इसका क्या उत्तर दे। कैसा रहा है अब तक यह तो वह स्वयं ही नहीं समझता। हां, रह सका है अब तक वह यह जरूर जानता है कोई उत्तर न पाकर उसने कहा—कुर्सी लेकर बैठ जाय कष्ट क्यों करतीं हैं।

'कष्ट कहां मुझे तो यहां बैठने में बड़ा आराम है।'

नहीं नहीं ठीक से बैठ जांय। कष्ट करने से लाभ ?

लता मुस्कराई बोली—आप को यह कैसे मालूम हो गया कि मुझे कष्ट होता है और यदि होता भी है तो आप को मेरे कष्ट की चिन्ता करने की आवश्यकता ही क्या है।

अमर को जैसे चोट लगी। लता अपनी बात की प्रतिक्रिया देखने के लिये अमर की ओर देख रही थी अमर ने संयत शब्दों में उत्तर दिया—सभ्यता और शिष्टाचार के ही नाते मैंने कहा था यदि आप नहीं उचित समझती तो बैठी रहे ?

लता हंस पड़ी। शिष्टाचार से अधिक आप को मुझसे कोई मतलब नहीं। खैर ! मैं ही अपने आराम का ख्याल करके बैठ जाती हूँ।

वह मेज से उतर कर अमर की चारपाई पर बैठ गई। अमर कुछ कह न सका। चुपचाप उसकी ओर देखता रहा।

क्षण भर संनाटा रहा फिर अमर ने बात का पहलू बदलने के विचार से पूंछा—कहिए घर पर कुशल से तो रहीं।

'हां, यदि जीवित रहना, शारीरिक व्याधि से मुक्त रहने में ही कुशल है तो मैं कुशल से रही।'

'मतलब ?' अमर के मुंह से निकल गया सहसा।

'मतलब पूंछ कर तुम क्या करोगे ? जिसके हृदय में दूसरे के प्रति दया न हो, जिसे दूसरे की वेदना का ज्ञान न हो आखिर उससे कुछ कहने से लाभ।

'लता तुमने यह कैसे समझा कि मुझ में दया नहीं ।'

तुम्हारे कहने से ?

अमर चुप हो गया। वह कुछ कहना चाहता था पर कह न सका। लता उसकी ओर देखती रही फिर बोली—अमर बताओ, तुम कभी कुछ समझना भी जानोगे। या इस के जीवन को भी तुम कहानी समझ कर उसके साथ मनमाना खेल करते रहोगे।

'लता तुम्हें आज हो क्या गया है !'

'काश तुम इतनाही समझ पाते अमर !

+ + +

पर अमर जटिल पहेली बना ही रहा वर्ष आए और चले ही गये और उसके जीवन की यह अधूरी कहानी इसके यौवन मंच का अवखुला पर हां अपनी सम्पूर्ण यथार्थता ले कर तब आया जब एक दिन संसार के विलास और स्वार्थ से थक कर अमर मंसूरी की सौंदर्य अपतिका में बैठा हुआ था। मस्तिष्क में उसके जाने कितनी धारणायें द्रुति वेग से आ रही थी और तभी दृष्टि के सम्मुख से वह दो दम्पति जाते हुए दिखाई पड़े। विचार शृङ्खला टूट गई और अमर ने अपने मन में कहा तो लता ने आखिर विवाह कर ही लिया जीवन में इतनी छलना लेकर कोई भी नारी अपनी बन जाने का अधिकार पा कैसे जाती है और तभी उसे ऐसा जान पड़ा जैसे विश्व की समस्त स्त्रियाँ छलनाही से निर्मित हुई है।

और तभी वह भाग चला स्त्रियों के संसार से दूर जाने के लिये दूर बहुत दूर न जाने कहाँ।

गीली आँखें

वह हिम-मुख था—
उन्नत तथा विशाल।
पाषाण का सा कलेजा।
उसको प्रेम न करने का था गर्व!
पर बसन्त की मधुमयी रात में—

चांदी की चादर पहने हुए वह आई। कौन जानता था कि आज इस पाषाण-हृदय का भी दिल पानी-पानी होगा, जिसकी स्मृति उसे सदा रुलाएगी।

हे आदर्श प्रेम के पुजारी!

हां, तो वह आई। यौवन का उन्माद था। अनेक सखियाँ साथ थीं। वो भी यौवन के मद में मदमाती थी!

उसके श्वेत, उज्ज्वल तेज पूर्ण मुख पर वे मोहित हो गई। दूसरे क्षण उनके अंग पर अंग मिल गए। सखियां उनके चारों ओर नाचने लगी। दोनों ने मिलकर गाया—

सो तो प्रिय ऐसे तुम मृदुल पत्रांक, में
तन मन मिल जायँ
उर पर उरोज।
और
अधर पर अधर हो।
युगल-युगल जंघा खेले मृदु सर्पिणी सी।

पर उसे ज्ञात न था कि ये परियाँ, ये चाँदी की चादरवाली चन्द्रमा की प्रेयसी है, किरण है, आभा है, सहचरी है, हाँ, और है वेश्या के समान वंचिका।

चन्द्रमा भय से क्रीड़ा से भागे वह भी चली गई।

पूर्व में खेलने लगी सूर्यमुखी परियाँ।

एक ने आकर उसके अंक में आश्रय लिया।

पूर्व स्मृति आई। आखें झर-झर बहने लगी।

उसी क्षण से आज तक उसका बन्द न हुआ अविरल रुदन संसार से ठुकराए हुए उसके आँसू केवल समुद्र में आश्रय पा सके।

तो क्या—

सबके हृदय में विश्वासघात है? प्रेमी के आँसू के लिए केवल समुद्र में ही स्थान है?

तो उपन्यास से

विधि का बदला

दोनों की जीवन सरिता समुन्द्र के निकट पहुंच कर शांति सी बह रही हैं। पति पत्नी संध्या को टहलने निकले तो उस स्त्री ने उन्हें देख अपने शिशु को आंचल से छिपा लिया। पत्नी की आंखों ने देखा तो छलक कर एक वेदना गिरने को हो आई। उसका यह समस्त धन ऐश्वर्य किस कार्य का—उस संतान हीन का।

कि अतीत का एक चित्र उसकी आंखों के सम्मुख खिच गया। वह नई ही ब्याह कर पति के पास आई थी। दोनों शिक्षित थे परन्तु पति की उस समय आय ही न थी तभी उन्होंने निश्चय किया वे तब तक संतान निग्रह करेंगे जब तक इस योग्य न होजांय।

सन्तान निग्रह के अनेकों साधन गर्भपात उसकी आंखों के सामने नाच गए।

सम्भवत: अब विधाता उसे मातृत्व के योग्य नहीं समझता।

उसने देखा वह स्त्री अपने बच्चे को छिपाये चली जा रहीं थी कि वही सन्तान हीना की दृष्टि न लग जाय।